लीचिमा

वर्ष : 10

राजभाषा पत्रिका

अंक : 1, 2024

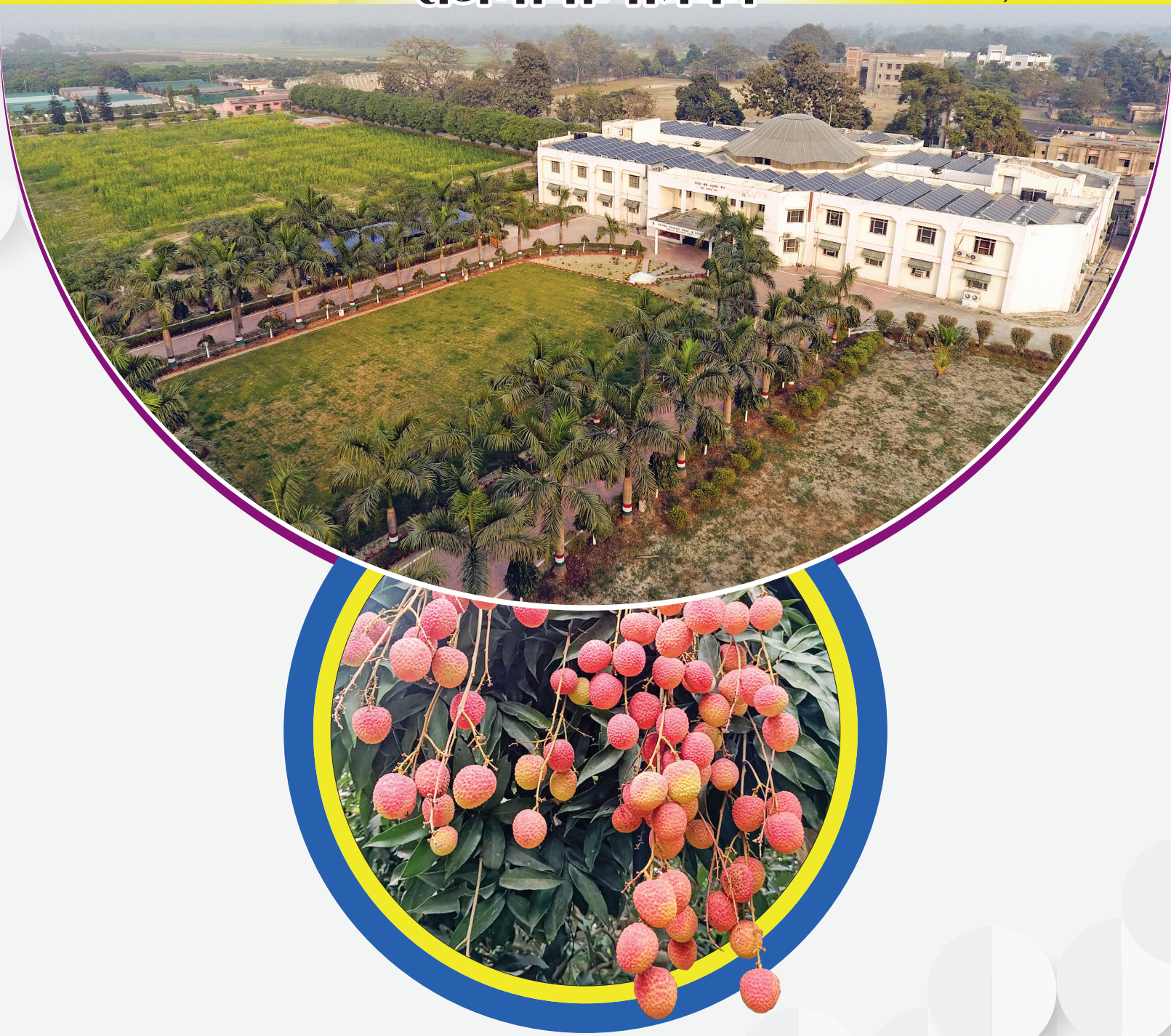

भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र

मुशहरी प्रक्षेत्र, मुशहरी, मुजफ्फरपुर - 842 002 (बिहार)

भाकृ अनुप
ICAR

राष्ट्रीय लीची अनु. केन्द्र, मुजफ्फरपुर
NRC ON LITCHI

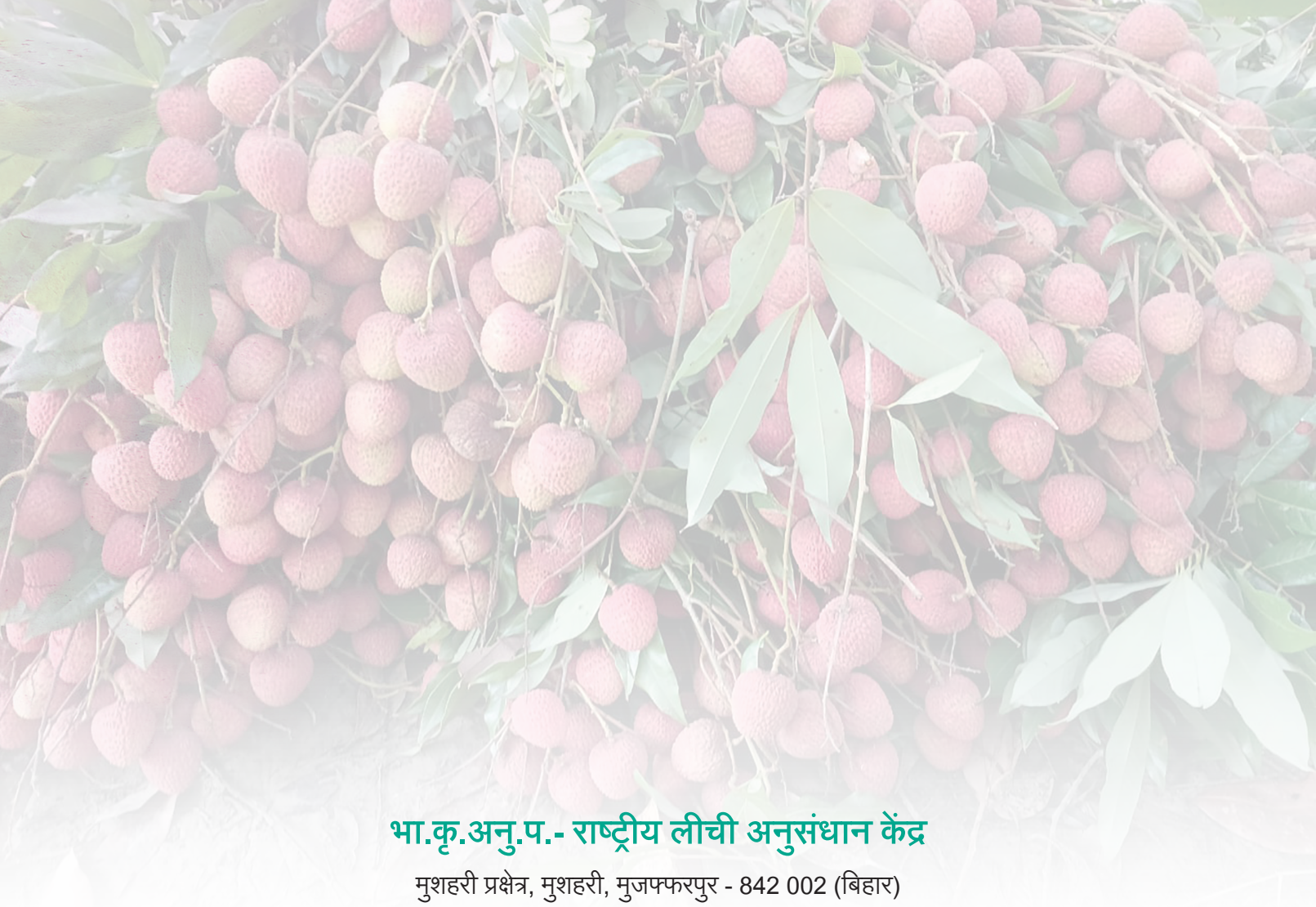

भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र

मुशहरी प्रक्षेत्र, मुशहरी, मुजफ्फरपुर - 842 002 (बिहार)

लीचिमा

राजभाषा पत्रिका

वर्ष :10, अंक :1, 2024

संरक्षक एवं प्रकाशक

डॉ. बिकाश दास

निदेशक

अस्वीकरण

लीचिमा पत्रिका में प्रकाशित तथ्यात्मक लेखों के लिए लेखक ही उत्तरदायी हैं न की भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र, मुशहरी, मुजफ्फरपुर के प्रकाशक, संरक्षक या प्रकाशन समिति। उपयोगकर्ताओं को सलाह दी जाती है की लीचिमा पत्रिका में दी गयी जानकारियों को उपयोग में लाने से पहले किसी विशेषज्ञ से विचार-विमर्श करें / सलाह लें। पत्रिका में सुधार एवं परिपक्वता हेतु सुझाव आमंत्रित है।

लीचिमा

राजभाषा पत्रिका

वर्ष : 10 अंक : 1, 2024

प्रधान संपादक

डॉ. सुनील कुमार

सहायक संपादक

डॉ. अभय कुमार

ई. अंकित कुमार

डॉ. इप्सिता सामल

डॉ. अशोक धाकड़

सहयोग

केंद्र की राजभाषा कार्यान्वयन समिति

डॉ. बिकाश दास, अध्यक्ष

डॉ. सुनील कुमार, प्रभारी, राजभाषा हिंदी

डॉ. प्रभात कुमार, सदस्य

डॉ. भाग्या विजयन, सदस्य

श्री शुभम सिन्हा, सदस्य सचिव

श्री रितेश कुमार, सहायक

प्रकाशक एवं संपर्क सूत्र

निदेशक/संपादक

भाकृअनुप
ICAR

भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र

मुशहरी प्रक्षेत्र, मुशहरी, मुजफ्फरपुर - 842 002 (बिहार)

ई-मेल: nrclitchi@yahoo.co.in | वेबसाइट: https://nrclitchi.icar.gov.in

विषय-वस्तु

क्र. सं.	शीर्षक एवं लेखक	पृष्ठ संख्या
1.	**भारत में लीची की खेती: दशा एवं दिशा** सुनील कुमार, बिकाश दास, अभय कुमार, अशोक धाकड़ एवं रोहित कुमार	1
2.	**बदलते मौसम में लीची की खेती: चुनौतियाँ और समाधान** विनोद कुमार एवं प्रभात कुमार	3
3.	**बागों में एशियाई बुनकर चींटी *(ओइकोफिला स्मार्गडीना)*: लाभकारी अभिभावक या अवांछित मेहमान?** इप्सिता सामल एवं विनोद कुमार	8
4.	**फसलों की सहनशीलता बढ़ाने के लिए जैव-जीवनाशक और जैव-प्रोत्साहक** विनोद कुमार, इप्सिता सामल, लोकेश कुमार एवं उपज्ञा साह	11
5.	**बीज प्राइमिंग: अंकुरण गुणता एवं उत्पादकता बढ़ाने की कारगर तकनीक** कविता, विनोद कुमार एवं संगीता कुमारी	14
6.	**बोर्डो मिश्रण बनाने की घरेलु तकनीक** रामाशीष कुमार, सुरभि सुमन एवं सोमेश कुमार	17
7.	**लीची में पोषकतत्व प्रबंधन** रामाशीष कुमार, प्रभात कुमार, सोमेश कुमार एवं लोकेश कुमार	19
8.	**भारत की पारम्परिक खाद्य प्रणाली** अंकित कुमार, इप्सिता सामल, भाग्या विजयन, चमन कुमार एवं उपज्ञा साह	21
9.	**लीची में नवाचार के दूरगामी परिणाम** भाग्या विजयन, इप्सिता सामल, अंकित कुमार, आशीष कुमार एवं बिकास दास	23
10.	**भारतीय कृषि पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव** प्रभात कुमार, शिव शंकर प्रसाद, अभय कुमार, रामाशीष कुमार एवं सोमेश कुमार	25
11.	**उद्यानिकी संपदा का संरक्षण: ग्रामीण विकास की दिशा में एक कदम** अभय कुमार, प्रतिभा सिंह, सुनील कुमार, भाग्या विजयन एवं सुजीत कुमार बिशी	28
12.	**शहरी खाद्य उत्पादन में क्रांतिकारी बदलाव: ऊर्ध्वाधर खेती का उदय** अभय कुमार, सुनील कुमार, प्रतिभा सिंह, प्रभात कुमार एवं विनोद कुमार	31
13.	**मृदा स्वास्थ्य एवं सतत कृषि के लिए बायोचार का महत्व** प्रभात कुमार, शिवशंकर प्रसाद, अभय कुमार, रामाशीष कुमार एवं सोमेश कुमार	34
14.	**जलवायु परिवर्तन का कृषि कीटों पर दुष्प्रभाव** अंश राज, इप्सिता सामल एवं भाग्या विजयन	36
15.	**तुड़ाई उपरांत लीची के फलों में जैव रासायनिक परिवर्तन** संजन कुमार भारती, इप्सिता सामल, अंकित कुमार, भाग्या विजयन एवं उपज्ञा साह	38
16.	**लीची में अनियमित फलन : कारण एवं निवारण** ज्योति कुमारी, सुनील कुमार, अशोक धाकड़, रोहित कुमार एवं गणेश कुमार	40
17.	**पर्यावरण सुरक्षा एवं मृदा सुधार में दलहनी फसलों की भूमिका** गणेश कुमार, रोहित कुमार, अजय कुमार रजक, धर्मेन्द्र कुमार एवं अशोक धाकड़	42
18.	**वर्ष 2024 के दौरान केंद्र में राजभाषा हिंदी से संबंधित गतिविधियाँ** सुनील कुमार, शुभम सिन्हा एवं रितेश कुमार	44

निदेशक की कलम से.....

भारत में लीची केवल एक मौसमी फल नहीं, बल्कि विविध वैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विमर्शों का केंद्रबिंदु बन चुकी है। इसके मधुर स्वाद से परे, इसकी खेती, प्रसंस्करण, निर्यात, पोषण मूल्य, और परंपरागत ज्ञान का व्यापक संसार है—जिसे समझना और संरक्षित करना आज की महती आवश्यकता है। भारत विश्व में लीची उत्पादन में दूसरे स्थान पर है, और इसका सबसे उत्कृष्ट उदाहरण है बिहार की *'शाही लीची'*, जिसे भौगोलिक संकेतक प्राप्त है। यह न केवल क्षेत्रीय पहचान को वैश्विक मान्यता दिलाता है, बल्कि स्थानीय किसानों को आर्थिक संबल और आत्मसम्मान भी प्रदान करता है।

विज्ञान के दृष्टिकोण से, लीची एक ऐसा फल है जिसमें विटामिन सी, पॉलिफेनॉल्स, और एंटीऑक्सिडेंट की भरपूर मात्रा पाई जाती है। यह पोषण विज्ञानियों के लिए एक अध्ययन का रोचक विषय है, वहीं खाद्य वैज्ञानिकों के लिए इसके प्रसंस्करण की सम्भावनाएँ अनंत हैं—जैसे लीची जूस, जेम, स्क्वैश, और डिहाइड्रेटेड उत्पाद। कृषि विज्ञानियों के लिए यह एक चुनौती और अवसर दोनों है। बदलते जलवायु परिदृश्य में लीची की फसल को कैसे टिकाऊ बनाया जाए, सिंचाई और उर्वरक के संतुलन को कैसे साधा जाए, और जैविक खेती को कैसे बढ़ावा मिले—इन सभी प्रश्नों पर नवाचार और अनुसंधान की आवश्यकता है।

सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोण से देखें तो लीची आधारित उद्योग ग्रामीण भारत में उद्यमिता को जन्म दे रहे हैं। महिला स्वयं सहायता समूह, और किसान उत्पादक संगठन इस दिशा में सशक्त भागीदारी निभा रहे हैं। यह केवल खेती नहीं, बल्कि *कृषि आधारित सामाजिक विकास* का एक मार्ग बन चुका है। और जब हम *सांस्कृतिक और साहित्यिक दृष्टि* से देखते हैं, तो लीची हमारी लोककथाओं, रीति-रिवाज़ों और यहां तक कि बाल साहित्य तक में अपना स्थान रखती है। वह एक ऋतुचिन्ह है—जिसकी आमद के साथ ही गर्मियों की शुरुआत का संकेत मिलता है।

"लीचिमा" के इस विशेषांक के माध्यम से हम लीची को एक समग्र दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहे हैं—जहाँ शोध, अनुभव, विचार और संभावनाएँ साथ-साथ चलती हैं। मुझे विश्वास है कि यह प्रयास न केवल शोधार्थियों को नई दृष्टि देगा, बल्कि नीति-निर्माताओं और उद्यमियों के लिए भी मार्गदर्शक सिद्ध होगा।

शुभकामनाओं सहित,

(बिकाश दास)
निदेशक

सम्पादकीय: लीची—एक फल, अनेक दृष्टिकोण

प्रिय पाठकों,

गर्मियों की आहट आते ही जैसे ही धूप थोड़ी तेज़ होती है, हमारे मन में कुछ मीठी स्मृतियाँ भी पकने लगती हैं—और उन स्मृतियों के बीच सबसे मीठा स्वाद अगर किसी का होता है, तो वह है लीची का। "लीचिमा" के इस नए अंक के साथ हम एक बार फिर आपके साहित्यिक संसार में अपनी अनुभूतियों, विचारों और सृजनात्मक ऊर्जा को साझा करने आए हैं। यह पत्रिका केवल लेखन का माध्यम नहीं, बल्कि उन अनकहे स्वरों की आवाज़ है जो समय, समाज और संवेदनाओं की जटिलताओं को अपनी सरल भाषा में बुनते हैं। "लीचिमा" का यह विशेषांक केवल एक फल की चर्चा नहीं करता, बल्कि भारतीय कृषि, अर्थव्यवस्था, पोषण विज्ञान और संस्कृति में लीची की बहुआयामी भूमिका को समर्पित है।

लीची भारत का एक प्रमुख मौसमी फल है, जिसका उत्पादन मुख्यतः बिहार, पश्चिम बंगाल, झारखंड, उत्तर प्रदेश और असम में होता है। जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता, खाद्य सुरक्षा और ग्रामीण रोजगार के संदर्भ में लीची एक महत्वपूर्ण शोध-विषय बन चुकी है। इस विशेषांक में हमने वैज्ञानिक शोध-पत्रों के साथ-साथ समाजशास्त्रीय विश्लेषणों को भी शामिल किया है, ताकि लीची को केवल बागवानी उत्पाद नहीं, बल्कि एक *संपूर्ण अध्ययन क्षेत्र* के रूप में प्रस्तुत किया जा सके।

में आशा करता हूँ कि यह मीठा प्रयास आपके मन को भी वैसे ही छू लेगा, जैसे एक गरम दोपहर में पेड़ की छांव में खाई गई ठंडी लीची आत्मा को ठंडक देती है। यह अंक छात्रों, शोधार्थियों, कृषिविज्ञानियों, उद्यमियों और नीति-निर्माताओं के लिए उपयोगी और प्रेरक सिद्ध होगा। में आभारी हूँ उन सभी लेखकों, पाठकों और समीक्षकों का, जिन्होंने हमें निरंतर प्रेरणा दी और हमारे इस साहित्यिक प्रयत्न को अपना स्नेह प्रदान किया।

सादर,

(सुनील कुमार)
प्रधान संपादक

1. भारत में लीची की खेती: दशा एवं दिशा

सुनील कुमार, बिकाश दास, अभय कुमार, अशोक धाकड़ एवं रोहित कुमार

भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र, मुजफ्फरपुर, बिहार

लीची (*लीची चाईनेंसिस*), जिसे लोकप्रिय रूप से "फलों की रानी" भी कहा जाता है, *"सैपिन्डेसी"* कुल एवं "नेफेलेई" उपकुल के अंतर्गत, एक उपोष्णकटिबंधीय फलदार वृक्ष है। लीची की उत्पत्ति दक्षिणी चीन में हुई थी, जहाँ इसकी खेती लगभग 2300 वर्षों से की जा रही है। इसकी कई जंगली प्रजातियाँ दक्षिण चीन, विशेष रूप हैनान प्रांत के आर्द्र वनों, गुआंगदोंग प्रांत की पश्चिमी पहाड़ियों, गुआंग्शी प्रांत के पूर्वी क्षेत्र, और युन्नान प्रांत के दक्षिणी हिस्सों में आज भी पाई जाती है। पिछले 400 वर्षों में इसे उन अन्य देशों में भी पहुंचाया गया है, जहां उष्णकटिबंधीय या उपोष्णकटिबंधीय जलवायु पाई जाती है। वर्तमान में लीची की खेती दुनिया के 20 से अधिक उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय देशों में की जा रही है। चीन लीची का सबसे बड़ा उत्पादक देश है, इसके बाद भारत, वियतनाम, और थाईलैंड लीची उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। इसके अतिरिक्त, लीची की पर्याप्त खेती पाकिस्तान, मैडागास्कर, दक्षिण अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया, संयुक्त राज्य अमेरिका, इज़राइल, और ब्राज़ील में भी की जाती है। लीची एक आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण फल है, जो दक्षिण-पूर्व एशिया के लाखों लोगों की आजीविका और अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, तथा अपने आकर्षक लाल रंग, मीठे और रसीले गूदे, एवं जैव-सक्रिय यौगिकों की उच्च मात्रा के कारण लोकप्रिय है। यह फल पोषक तत्वों का एक उत्कृष्ट स्रोत है, जिसमें पॉलीसेकेराइड्स (बहुशर्कराएँ), विटामिन्स, पॉलीफिनॉल्स (जैसे: फ्लावोनॉइड्स, स्टेरॉयड्स, टरपीन, फिनोल्स और फ्लावन-3-ऑल अणु) और खनिज तत्व शामिल हैं। लीची ने अपने सुगंधित स्वाद, रसदार गूदा, और उच्च पोषण मूल्य के कारण विश्व स्तर पर लोकप्रियता प्राप्त की है।

वर्तमान स्थिति (दशा)

भारत में, लीची, बर्मा (म्यांमार) के माध्यम से पहुँची और 17वीं शताब्दी के अंत में सबसे पहले बंगाल में इसकी खेती की शुरुआत हुई, इसके बाद यह देश के अन्य भागों में फैल गई। भारत, चीन के बाद, दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा लीची उत्पादक देश है, जहाँ इसकी खेती लगभग 98 हजार हेक्टेयर क्षेत्र में होती है, कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय ने वर्ष 2025 में लीची का कुल उत्पादन 5.78 लाख मीट्रिक टन आंका था। भारत में लीची की आनुवंशिक विविधता सीमित है और यह एक जलवायु-संवेदनशील फसल मानी जाती है। इसकी पारंपरिक खेती हिमालय की तराई क्षेत्रों से लगे मैदानी इलाकों, जैसे: बिहार, पश्चिम बंगाल, झारखंड, छत्तीसगढ़, उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश, त्रिपुरा, असम, पंजाब एवं हरियाणा में की जाती है। हाल ही में, उच्च आर्थिक लाभ और बेमोसम उत्पादन के कारण लीची की खेती गैर-पारंपरिक क्षेत्रों में भी फैल रही है। उत्तर भारत के राज्यों में लीची के फल मई और जून में पकते हैं, जबकि इसके विपरीत, दक्षिण भारत के कुछ गैर-पारंपरिक क्षेत्रों में लीची दिसंबर और जनवरी में पकती है। गैर-पारंपरिक क्षेत्रों में लीची की कम उपलब्धता के बावजूद उच्च कीमतें मिलने के कारण किसान इन क्षेत्रों में लीची की खेती की ओर आकर्षित हो रहे हैं। भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र, मुजफ्फरपुर के द्वारा हाल ही में किये गए शोध के अनुसार, भारत के कुल भौगोलिक क्षेत्र (327.9 मिलियन हेक्टेयर) में से लगभग 47% (153.6 मिलियन हेक्टेयर) लीची की खेती के लिए अनउपयुक्त, जबकि 3.7% (12.1 मिलियन हेक्टेयर) बहुत उपयुक्त और 9.98% (32.7 मिलियन हेक्टेयर) क्षेत्र उपयुक्त पाया गया। बिहार, उत्तर प्रदेश, झारखंड, पश्चिम बंगाल, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश लीची की खेती के लिए बहुत उपयुक्त राज्य पाए गए। इसके अतिरिक्त, महाराष्ट्र के अमरावती और नागपुर, गुजरात के बनासकांठा, आंध्र प्रदेश के विशाखापत्तनम और विजयनगरम, केरल के इडुक्की, पलक्कड़ और मालाबार, कर्नाटक के मैसूर और कूर्ग, तथा तमिलनाडु के नीलगिरी और डिंडिगुल जिलों के कुछ छोटे हिस्से इसकी खेती के लिए उपयुक्त, बाकी दक्षिण और मध्य भारत के अधिकांश हिस्से लीची की खेती के लिए अनउपयुक्त पाए गए।

कुर्ग (कर्नाटक) में लीची के बेमोसम उत्पादन पर प्रक्षेत्र दिवस का आयोजन

कुर्ग (कर्नाटक) में किसान के खेत में लीची में फलन

राजस्थान के चित्तौड़गढ़ में किसान के खेत पर लीची से सम्बन्धित जानकारी देते डॉ. बिकाश दास लीची उत्पादन में समस्याएं

जलवायु परिवर्तन और मौसम की अनिश्चितता: लीची एक जलवायु-संवेदनशील फसल है। इसके पुष्पन और फलन के लिए ठंडा मौसम आवश्यक होता है, लेकिन पिछले कुछ वर्षों में जलवायु में लगातार बदलाव, समय से पहले गर्मी पड़ना या ओलावृष्टि जैसे कारणों से फूल झड़ जाते हैं और फल कम लगते हैं। समय से पहले या अनियमित वर्षा व तापमान में उतार-चढ़ाव लीची उत्पादन को प्रभावित करते हैं।

पुराने एवं जीर्ण-शीर्ण बाग: पारंपरिक क्षेत्रों में पुराने और जीर्ण-शीर्ण हो चुके लीची के बाग़ों की बढ़ती संख्या।

अनियमित फलन: लीची में हर साल समान मात्रा में फल नहीं आते। कई बार एक वर्ष अधिक उपज होती है, जबकि अगले वर्ष कम या नगण्य। इस अनियमितता से किसानों की आमदनी पर असर पड़ता है।

कम फल सेट और फल झड़ना: पुष्पन के बाद फूलों से फल बनने की प्रक्रिया (फ्रूट सेट) कई बार अधूरी रह जाती है। कमजोर परागण, तापमान में उतार-चढ़ाव और उचित पोषण की कमी के कारण फल झड़ जाते हैं।

फलों का फटना एवं झुलसना: पके हुए फलों में दरारें आना लीची की बड़ी समस्या है। यह मुख्यतः मिट्टी में नमी की कमी, अधिक तापमान और असंतुलित पोषण के कारण होता है। इससे न केवल उत्पादन घटता है बल्कि फल की गुणवत्ता भी प्रभावित होती है।

कीट एवं रोग: लीची की फसल को तना छेदक, फल छेदक, लीफ फोल्डर एवं गंधी बग (बदबूदार बग) जैसे कीटों से नुकसान होता है। इसके अलावा फफूंदी (फंगल) और जीवाणु रोग भी फलों को सड़ाने और झड़ाने का कार्य करते हैं जिससे लीची की गुणवत्ता गिरती है।

बाजार व मूल्य स्थिरता: किसानों को उचित मूल्य नहीं मिल पाता क्योंकि बिचौलियों का अधिक हस्तक्षेप होता है।

अल्प भंडारण अवधि: लीची जल्दी खराब होने वाला फल है। इसकी शेल्फ लाइफ बहुत कम होती है (3–5 दिन), जिससे इसकी बिक्री और परिवहन में कठिनाई आती है। भारत में कोल्ड स्टोरेज की कमी इस समस्या को और बढ़ाती है।

प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन की कमी: भारत में लीची का अधिकांश भाग ताजा फल के रूप में ही बिकता है। लीची आधारित प्रसंस्कृत उत्पाद जैसे स्क्वैश, जूस, जैम आदि का उत्पादन सीमित है। इससे किसानों को सीमित बाजार मूल्य ही मिल पाता है।

प्रशिक्षण और तकनीकी जानकारी का अभाव: कई क्षेत्रों में किसानों को लीची उत्पादन की उन्नत तकनीकों, कीट नियंत्रण, सिंचाई प्रबंधन और फसल संरक्षण की जानकारी नहीं होती। इससे उपज पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

भविष्य की संभावनाएं (दिशा)

उन्नत किस्मों का विकास: बोनी एवं जल्दी फलन देने वाली, बीजरहित या छोटे बीज वाली, लंबी शेल्फ लाइफ और परिवहन योग्य, कीट और रोग प्रतिरोधक क्षमता वाली, जलवायु सहनशीलता वाली एवं प्रारंभिक, मध्य और देर से पकने वाली किस्में, जिससे बाजार में लीची की उपलब्धता बढ़े को विकसित करने की आवशयकता है।

उन्नत कृषि तकनीक का प्रयोग: उन्नत तकनीके जैसे गुणवत्ता पूर्ण रोपण सामग्री, सघन बागवानी, पुराने बागों का जीर्णोधार, निरन्तर फलन के लिए गर्डलिंग, मिनी स्प्रिंकलर एवं टपक सिंचाई, बायोफर्टिलाइज़र, एवं समन्वित कीट एवं रोग प्रबंधन अपनाकर उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है।

प्रसंस्करण और मूल्य संवर्धन: लीची से जूस, जैम, स्क्वैश आदि बनाकर उसे घरेलू एवं अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में बेचा जा सकता है।

ब्रांडिंग और भोगोलिक संकेत: 'शाही लीची' को भोगोलिक संकेत प्राप्त है, इससे किसानों को निर्यात में लाभ मिल सकता है।

शीत भंडारण और लॉजिस्टिक सुधार: सरकारी एवं निजी स्तर पर कोल्ड स्टोरेज की संख्या बढ़ाने से लीची की शेल्फ लाइफ बढ़ सकती है।

निर्यात को प्रोत्साहन: भारत से लीची का निर्यात मुख्यतः खाड़ी देश, यूके, और नेपाल को होता है। इसमें वृद्धि की काफी संभावना है।

निष्कर्ष:

भारत में लीची उत्पादन में अपार संभावनाएं हैं, लेकिन इससे जुड़े उत्पादन की समस्याओं का समाधान करना आवश्यक है। यदि सरकार, कृषि वैज्ञानिक, और किसान मिलकर उन्नत किस्मों का विकास, जलवायु-अनुकूल खेती, प्रसंस्करण सुविधा और बेहतर विपणन प्रणाली अपनाएं, तो लीची न केवल घरेलू बल्कि अंतरराष्ट्रीय बाजार में भी भारत की पहचान को और मजबूत कर सकती है। यदि सही दिशा में प्रयास किए जाएं तो यह क्षेत्र किसानों की आमदनी बढ़ाने के साथ-साथ राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में भी योगदान दे सकता है।

2. बदलते मौसम में लीची की खेती: चुनौतियाँ और समाधान

विनोद कुमार एवं प्रभात कुमार
भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर, बिहार

लीची *(लीची चाइनेन्सिस)* एक ऐसा उष्णकटिबंधीय फल है जिसे उसकी अनूठी मिठास और सुगंध के कारण बहुत पसंद किया जाता है। विशेष रूप से बिहार, और खासकर मुजफ्फरपुर जिला, 'शाही' लीची के लिए प्रसिद्ध है। बिहार की उपजाऊ मिट्टी और अनुकूल मौसम ने इस क्षेत्र को लीची उत्पादन का केन्द्र बना दिया है, जिससे यहाँ के किसानों को एक मजबूत आर्थिक आधार मिला है। हालाँकि, पिछले कुछ वर्षों में बदलते मौसम के पैटर्न ने लीची की खेती के समक्ष नई चुनौतियाँ प्रस्तुत की हैं। मौसम में हो रहे परिवर्तन, जैसे कि तापमान में अत्यधिक उतार-चढ़ाव, लीची की उत्पादन क्षमता और गुणवत्ता पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकते हैं। विशेष रूप से, फूल आने और फल बनने के समय पर तापमान में असामान्यता से फलों का झड़ना, धूप से फलों का झुलसना और फलों का फटना जैसी समस्यायें उत्पन्न हो सकती हैं। इन समस्याओं के कारण न केवल पैदावार कम हो सकती है, बल्कि फलों की गुणवत्ता भी प्रभावित होती है, जिससे किसानों को आर्थिक नुकसान हो सकता है। ऐसी स्थिति में, लीची की टिकाऊ खेती को सुनिश्चित करने के लिए फसल प्रबंधन में नवाचार और बदलाव की आवश्यकता है। यह लेख बदलते मौसम की चुनौतियों का सामना कर रहे लीची उत्पादकों की समस्याओं का गहन विश्लेषण करता है और उन्हें सफलतापूर्वक हल करने के लिए व्यावहारिक और कारगर उपाय प्रस्तुत करता है।

हाल के बर्षों में लीची उत्पादकों द्वारा सामना की जाने वाली चुनौतियाँ

बदले हुए मौसम पैटर्न

लीची खेती के लिए सबसे बड़ी चुनौती मौसम पैटर्न में बदलाव है। अनियमित वर्षा, असामान्य तापमान में उतार-चढ़ाव और चरम मौसम की घटनाओं ने लीची की पारंपरिक विकास चक्रों को बाधित कर दिया है। इन परिवर्तनों के कारण फलने की अवधि में कमी और फसल पर तनाव-संबंधी स्थितियों में वृद्धि हुई है, जो उत्पादन और गुणवत्ता दोनों को प्रभावित कर रही है। एक दशक से भी अधिक समय से असामान्य मौसम पैटर्न के कारण लीची का मौसम बदल रहा है, जिससे फल के विकसित होने से लेकर पकने तक का समय 10-12 दिन कम हो गया है। फरवरी से अप्रैल माह के दौरान जब 2024 के मौसम की तुलना 2014 से की गयी तो बदलाव स्पष्ट पता चला। फरवरी 2014 की तुलना में फरवरी 2024 में अधिकतम तापमान में 1.5 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि हुई है, जबकि न्यूनतम तापमान में 0.2 डिग्री सेल्सियस की मामूली कमी आयी। औसत अधिकतम तापमान में 2.23 डिग्री सेल्सियस की उल्लेखनीय वृद्धि देखी गयी, जो सामान्य वार्मिंग प्रवृत्ति को दर्शाता है। औसत न्यूनतम तापमान में भी 0.44 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि हुई है, हालांकि अधिकतम तापमान की तुलना में यह परिवर्तन कम स्पष्ट है। यह विश्लेषण दिन के तापमान में उल्लेखनीय वृद्धि का सुझाव देता है, जो व्यापक जलवायु परिवर्तनों का संकेत हो सकता है। इसी तरह मार्च 2014 की तुलना में मार्च 2024 में अधिकतम तापमान में 3.7 डिग्री सेल्सियस की कमी आयी, जबकि न्यूनतम तापमान में 2.8 डिग्री सेल्सियस की कमी आयी। औसत अधिकतम तापमान में 1.15 डिग्री सेल्सियस की कमी देखी गई है, जो कि हल्की ठंडक की प्रवृत्ति को दर्शाता है।

लीची फल विकास की वही अवस्था 10-12 दिन देर से आना

औसत न्यूनतम तापमान में भी 0.24 डिग्री सेल्सियस की कमी आई है। यह विश्लेषण दशक भर में दिन और रात के तापमान में सामान्य कमी का संकेत देता है। यह ठंडक की प्रवृत्ति विभिन्न जलवायु कारकों से प्रभावित हो सकती है और मौसम के पैटर्न में स्थानीय परिवर्तनों का संकेत देती है। अप्रैल 2014 की तुलना अप्रैल 2024 से करें तो अधिकतम तापमान में 0.3 डिग्री सेल्सियस की मामूली वृद्धि हुई, जबकि न्यूनतम तापमान में 3.0 डिग्री सेल्सियस की अधिक महत्वपूर्ण वृद्धि देखी गई। औसत अधिकतम तापमान में 0.49 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि हुई, और औसत न्यूनतम तापमान में 1.04 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि हुई। ये परिवर्तन इस अवधि में तापमान में वृद्धि की प्रवृत्ति का संकेत देते हैं, जिसमें दिन और रात दोनों के तापमान में वृद्धि देखी गई। मई 2014 और मई 2024 के तापमान के विश्लेषण से पता चलता है कि औसत अधिकतम तापमान (-2.02 डिग्री सेल्सियस) में मामूली कमी आई है और औसत न्यूनतम तापमान (+0.82 डिग्री सेल्सियस) में थोड़ी वृद्धि हुई है। जबकि 2024 में दैनिक अधिकतम तापमान आम तौर पर कम था, न्यूनतम तापमान 2014 की तुलना में अधिक था। इसके परिणामस्वरूप मई के लिए दैनिक तापमान सीमा में शुद्ध कमी आयी। देखे गए परिवर्तन प्राकृतिक विविधताओं या लंबी अवधि के जलवायु रुझानों के कारण हो सकते हैं। अतिरिक्त वर्षों की जांच करने से इस स्थान में तापमान पैटर्न की अधिक व्यापक समझ मिलेगी। वर्षा या आर्द्रता जैसे अन्य मौसम डेटा का विश्लेषण करने से और जानकारी मिल सकती है। यह सारांश मई 2014 और मई 2024 के लिए दैनिक अधिकतम और न्यूनतम तापमान में विपरीत रुझानों पर प्रकाश डालता है। अंतर्निहित कारणों और संभावित दीर्घकालिक प्रभावों को निर्धारित करने के लिए आगे की जांच की आवश्यकता होगी।

परागण और मधुमक्खियों की भ्रमण पर प्रभाव

लीची बागानों में मधुमक्खियों का भ्रमण, परागण, और फल सेटिंग के लिए आदर्श तापमान आमतौर पर 20°C से 30°C के बीच और सापेक्ष आर्द्रता लगभग 60-70% होती है। बिहार में, लीची के फूलने का मौसम आमतौर पर फरवरी से मार्च तक होता है, जो आदर्श परागण और फल सेट के लिए आवश्यक मध्यम तापमान के साथ अच्छी तरह मेल खाता है। यह भी आवश्यक है कि इस अवधि के दौरान अन्य जलवायु कारक, जैसे आर्द्रता और हवा, परागण प्रक्रिया के लिए अनुकूल हों।

लीची के फलों का सूर्यप्रकाश जलन और फल फटना

लीची के फूलने और फल सेटिंग अवधि (फरवरी से अप्रैल 2024) के दौरान डॉ राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविदयालय, पूसा, समस्तीपुर से प्राप्त मौसम डेटा की समीक्षा से पता चलता है कि फरवरी माह में औसत अधिकतम तापमान 27°C था, जिसमें कई दिन तापमान 30°C से ऊपर थे। मार्च में औसत अधिकतम तापमान बढ़कर 32°C हो गया, जिसमें अक्सर दिन का तापमान 35°C से ऊपर थीं। अप्रैल में औसत अधिकतम तापमान लगातार 35-38°C के आसपास रहा, और कुछ दिन 40°C को पार कर गए। इसी तरह, फरवरी से अप्रैल माह के दौरान सापेक्ष आर्द्रता 50% से 70% के बीच रही, जिसमें सुबह के समय उच्च आर्द्रता स्तर और दोपहर में कम आर्द्रता के मान देखने को मिले। ये बदलाव इस बात के संकेत है कि परागण और मधुमक्खियों की भ्रमण के लिए मौसम अनुकूल नहीं रहा था।

बागों की मृदा स्वास्थ और सूक्ष्मजीवों की संख्या संबन्धित समस्यायें

बिहार के लीची बागों की मिट्टी का पीएच क्षारीय (7.0-9.5) है। इतने ज्यादा पीएच पर बहुत सारे पोषक तत्वों की उपलब्धता कम हो जाती है। खासकर फॉस्फोरस, पौधों को मिलना कम हो जाता और ज्यादातर सूक्ष्म पोषक तत्व भी अनुपलब्ध हो जाते हैं। सदियों से बिहार के लीची बाग के जड़ों में माइकोराइजा और अन्य सूक्ष्मजीव की क्रियाएँ इतने पीएच पर भी पोषक तत्वों को उपलब्ध कराते रहे हैं। बदलते जलवायु एवं कृषि क्रियाओं ने मिट्टी में सूक्ष्म्जीवों की संख्या कम कर दिया है और बागवानी प्रबंधन से संबंधित समस्याओं को बढ़ा दिया है। अवांछनीय मिट्टी सूक्ष्मजीवों, पोषक तत्वों की कमी, और पानी प्रबंधन की समस्यायें अधिक प्रचलित हो गई हैं। जिंक और बोरॉन जैसे सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी ने लीची की सेहत और उत्पादकता पर नकारात्मक प्रभाव डाला है। राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर द्वारा वर्ष 2016 का एक केस अध्ययन यहाँ उद्धृत करना अच्छा रहेगा। वर्ष 2016 में मुजफ्फरपुर के बोचहां ब्लॉक में बड़े पैमाने पर पुराने लीची के पेड़ों का सूखना देखा गया था। केंद्र के वैज्ञानिको ने बिहार सरकार के कृषि विभाग के कर्मियों के साथ कारण की जांच की थी। पेड़ों के सूखने का कारण मिट्टी की प्रोफाइल में एक मीटर की गहराई तक नमी की कमी, रेतीली मिट्टी की बहुत खराब जल धारण क्षमता, मिट्टी के कणों को बांधने के लिए लगभग शून्य कार्बनिक पदार्थ, एवं लगभग कोई सूक्ष्मजीव नहीं थे।

मुजफ्फरपुर के बोचहां ब्लॉक में एक बगीचे में सूखते वृक्षों का दृश्य

उभरते कीट एवं रोग की समस्यायें

लीची वृक्ष में विभिन्न प्रकार के कीटों और रोगों का प्रकोप होता है जिससे उत्पादन एवं गुणवत्ता प्रभावित होती है। अच्छी उपज के लिए समय पर इनका प्रबंधन जरूरी है। लीची में कीटों की समस्या ज्यादा रही है और उनमें 'फल बेधक' कीट एक महत्वपूर्ण नाशीकीट रहे हैं जिसके प्रबंधन पर किसान मुख्य तौर पर अपना ध्यान केन्द्रित करते थे और इसके लिए कई रासायनिक दवाइयों का छिड़काव करते रहे हैं। पर, हाल के बर्षों में लीची में नए कीटों और रोगों की समस्याएँ उभरकर सामने आई हैं। इनमें 'स्टिंक बग' और 'फ्लावर वेबर' कीट प्रमुख हैं, साथ ही 'मंजर और फल झुलसा' रोग भी महत्वपूर्ण है। लीची स्टिंक बग कीट का आक्रमण बिहार के लीची के बागों में वर्ष 2021 से लगातार बढ़ रही है। इस कीट के नवजात और वयस्क दोनों ही खाऊ-रूप से पौधों के ज्यादातर कोमल हिस्सों जैसे कि बढ़ती कलियाँ, पत्तियाँ, पत्तीवृंत, पुष्पक्रम, विकसित होते फलों के डंठल और लीची के पेड़ की कोमल शाखाओं पर जीवन निर्वाह करते हैं। कीट के अत्यधिक रस चूसने से

बढ़ती कलियाँ और कोमल अंकुर सूख जाती हैं और फल काले पड़ जाते हैं। रस चूसने के परिणामस्वरूप फूल और विकसित होते फल गिरते हैं। 'फ्लावर वेबर' कीट लीची के लिए एक नई समस्या है जो पिछले 2-3 सालों में बिहार में बड़ी आर्थिक क्षति पंहुचानेवाला कीट के रूप में उभरकर सामने आई है। लीची में मंजर (पुष्पक्रम) आते ही इस कीट का प्रकोप शुरू हो जाता है। इस कीट की केटरपिलर(पिल्लू) विकसित होती फूल की कलियों को खाना शुरू करते हैं। धीरे-धीरे पुष्पक्रम के सारे कलियों और विकसित होते फूलों को पिल्लू रेशमी जाले में लपेटकर गैलरी बनाकर अंदर रहते और खाते हैं। वे पुष्पक्रम के डंठल में भी छेद कर देते हैं। बाद में विकसित होते फलों को भी खाते हैं। इन फलों को गौर से देखने पर बड़े छेद दिखाई देते हैं। कीट के अत्यधिक प्रकोप से पूरे वृक्ष के मंजर झुलसे हुये प्रतीत होते हैं जैसे मंजर झुलसा रोग लग गया हो। 'मंजरऔर फल झुलसा' रोग की ब बात करें तो इससे भी काफी आर्थिक नुकसान होता है । इसके रोगकारक मंजरों को झुलसा देते हैं जिससे प्रभावित मंजरों में कोई फल नहीं लग पाते। ऐसे मंजर देखने में सूर्य-किरणों से जली हुई प्रतीत होती है। अगर मौसम अनुकूल नहीं रहा और मंजर की अवस्था रोग से बच गई तो बाद में अनुकूल मौसम होने पर फल भी झुलस जाते हैं। तुड़ाई उपरांत भी इसके रोगजनक फल सड़न पैदा करने में प्रमुख कारक होते हैं। इस प्रकार, नए कीट और रोगों की समस्याओं से लीची की सुरक्षा करने के लिए किसानों को रासायनिक दवाओं के छिड़काव पर अधिक खर्च करना पड़ रहा है, जिससे लीची की उत्पादन लागत में वृद्धि हो रही है।

'स्टिंक बग' और 'फ्लावर वेबर' कीट, एवं 'मंजर झुलसा' रोग (बाएँ से दायें क्रमशः)

फसल प्रबंधन प्रथाएँ

बिहार के कई लीची बागान ठेकेदारों द्वारा प्रबंधित होते रहे हैं, न कि सीधे किसानों द्वारा। इस ठेकेदार-संचालित दृष्टिकोण से अक्सर फसल प्रबंधन प्रथाओं पर उचित ध्यान नहीं दिया जाता, जिससे बागान की देखभाल के लिए उपयुक्त उपायों की कमी होती है। इस कमी के कारण मिट्टी की सेहत, वृक्ष की देखभाल, और फसल की गुणवत्ता प्रभावित होती है।

फसल सुरक्षा उपाय

प्रभावी फसल की सुरक्षा के लिए सही जानकारी की आवश्यकता होती है, लेकिन कई उत्पादकों को कीट और रोग प्रबंधन के बारे में सटीक और व्यावहारिक ज्ञान की कमी होती है। अक्सर वे विशेषज्ञों की सलाह के बजाय स्थानीय दवा विक्रेता के सलाह पर निर्भर करते हैं । सही जानकारी की कमी के कारण सही उपचार नहीं हो पाता और अक्सर कई मामलों में खर्च भी बढ़ जाता है। लीची कीटों और बीमारियों के प्रकोप के प्रति संवेदनशील होती है।

उत्पादन लागत में वृद्धि

हाल के बर्षों में लीची उत्पादन की लागत में काफी वृद्धि हुई है, जो कि उर्वरक, कीटनाशक और सिंचाई जैसे उपादानों की बढ़ती लागत के कारण है। एक और कारण सही प्रबंधन की जानकारी न होना भी है जिससे अनावश्यक रासायनिक दवाइयों और तथाकथित टॉनिक मिश्रण का प्रयोग हो रहा है। यह वित्तीय बोझ किसानों के लिए आवश्यक सुधारों में निवेश करना और बदलती परिस्थितियों के अनुकूल होना चुनौतीपूर्ण बना देता है।

मौसम अनुकूलन प्रस्तावित समाधान

लीची सीजन में ही नहीं, साल भर फसल प्रबंधन करना: जब बाग ठेकेदार-संचालित होते हैं तो वे बस लीची सीजन में ही, कैसे ज्यादा से ज्यादा फल प्राप्ति हो, वृक्षों के दोहन पर ध्यान देते । इस मौसमी देखभाल दृष्टिकोण में बदलाव की जरूरत है ताकि साल भर मृदा और वृक्ष स्वास्थ प्रबंधन पर ध्यान दिया जा सके, जो मौसम पैटर्न के अनुकूलन के लिए भी जरूरी है । मिट्टी की सेहत, पोषक तत्वों की मात्रा, और पेड़ की स्थिति की सतत निगरानी और प्रबंधन से उत्पादन में वृद्धि और उत्पादकता को बनाए रखने में मदद मिलेगी।

किसान-संचालित बागवानी प्रबंधन की ओर: ठेकेदार-संचालित से किसान-संचालित बागवानी प्रबंधन की ओर बदलाव यह सुनिश्चित करेगा कि जो लोग बागान की सफलता में सीधे निवेशित हैं, वे इसकी देखभाल के लिए जिम्मेदार होंगे। यह दृष्टिकोण अधिक विस्तृत ध्यान और अधिक व्यक्तिगत प्रबंधन प्रथाओं को प्रोत्साहित करेगा।

सही छत्रक (कैनोपी) प्रबंधन: प्रभावी छत्रक (कैनोपी) प्रबंधन सूरज की रोशनी की एक्सपोजर को नियंत्रित करने में मदद करता है, सनबर्न (फलों का सूर्य प्रकाश जलन) की घटनाओं को कम करता है, और समग्र फल की गुणवत्ता को सुधारता है। छंटाई और कैनोपी समायोजन जैसी तकनीकों से प्रकाश की प्रवेश और वायु संचलन को अनुकूलित किया जा सकता है। इसके अलावा उचित छत्रक के लाभों में रोग में कमी, कीटनाशकों का बेहतर कवरेज और संपर्क, और फलों की आसान तुड़ाई शामिल है।

लीची के वृक्ष का एक आदर्श क्षत्रक

बागानों का पुनरोद्धार: पुराने, बुढ़े बागानों की चयनात्मक छँटाई और मिट्टी के सुधार जैसे प्रथाओं के माध्यम से पुनरोद्धारित करना उनकी उत्पादकता को बहाल कर सकता है। पुनरोद्धार से फल की गुणवत्ता में सुधार और बागान की दीर्घकालिकता बढ़ाई जा सकती है।

उचित पोषक तत्व प्रबंधन: प्रमुख पोषक तत्वों (नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश) के साथ-साथ नियमित रूप से सूक्ष्म पोषक तत्वों की आपूर्ति, जिसमें जिंक और बोरॉन शामिल हैं, भी मिट्टी करना आवश्यक है। खेत में गोबर और जैविक खाद के उपयोग से मिट्टी की सेहत में सुधार होगा और लीची वृक्षों के लिए संतुलित पोषक तत्वों की आपूर्ति सुनिश्चित होगी।

कार्बनिक/जैविक खाद की उपलब्धता बढ़ाना: वृक्षों को आवश्यक पोषक तत्वों की उपलब्धता सुनिश्चित करने और मिट्टी के स्वास्थ्य को बेहतर बनाने के लिए जैविक स्रोतों का अधिकतम उपयोग करना आवश्यक है। शहरी, पशु, और कृषि औद्योगिक कचरे का पुनर्चक्रण करके खाद या वर्मी कम्पोस्ट तैयार किया जा सकता है। एकान्तर वर्षों में दलहानी फसल की हरी खाद का उपयोग और जैविक नियंत्रण को प्राथमिकता देना, लाभकारी सूक्ष्मजीवों की आबादी को बढ़ाने में सहायक होता है।

कृषि कचरे का पुनर्चक्रण करके वर्मी कम्पोस्ट तैयार किया जाना

सूक्ष्मजीवी कंसोर्टिया का प्रयोग और 'इन-सीटू माइकोराइज़ेशन': माइकोराइज़ा, ट्राइकोडर्मा, और एज़ोटोबैक्टर जैसे सूक्ष्मजीवी कंसोर्टिया (मिश्रण) का उपयोग मिट्टी की सेहत और पौधों की वृद्धि को बढ़ाता है। एजोटोबैक्टर और ट्राईकोडर्मा, ग्लोमस माइकोराइज़ा के वृद्धि में मदद करते हैं और जड़ विकास को भी गति प्रदान करते हैं। मँडुआ/ रागी (फिंगर मिलेट) जैसे मेज़बान पौधों का उपयोग करके लीची बागों में 'इन-सीटू माइकोराइज़ेशन' किया जा सकता है। माइकोराइज़ल कवक को पौधों के सीधे उनके प्राकृतिक विकास के वातावरण में प्रयोग करना, जैसे मिट्टी या सब्सट्रेट में सीधे प्रयोग करना 'इन-सीटू माइकोराइज़ेशन' कहलाता है। माइकोराइज़ल कवक पौधे की जड़ों के साथ एक सहजीवी सम्बन्ध बनाते हैं, जिससे कवक और पौधे दोनों को लाभ होता है। यह तकनीक वास्तव में सामान्य रूप से माइक्रोबायोम को बेहतर बनाने और लीची और अन्य फलों की फसल के बागों सहित बाग पारिस्थितिकी तंत्र में माइकोराइज़ल आबादी को बढ़ाने में मददगार है।

मँडुआ/ रागी (फिंगर मिलेट) – माइकोराइजा का मेज़बान पौधा

लीची के बाग का *इन-सीटू माइकोराइज़ेशन:* मिट्टी में सड़ी गोबर की खाद के साथ माइकोराइजा कल्चर का प्रयोग
तथा मेजबान पौधे के रूप में मँडुआ/ रागी फसल लगाना

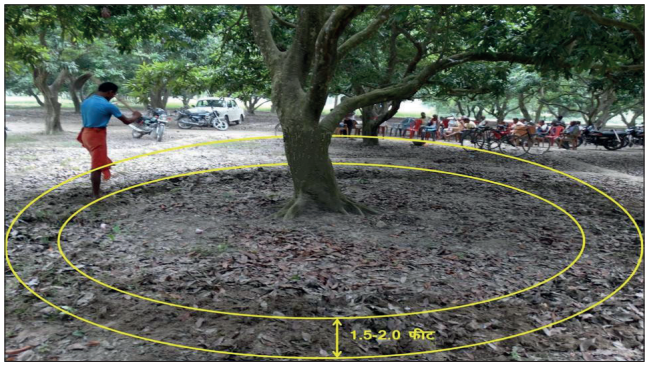

लीची में ट्राइकोडर्मा के प्रयोग विधि का एक दृष्टांत

मल्चिंग और सॉड कल्चर: मल्च या संरक्षण कृषि पद्धतियों को लागू करने से मिट्टी की नमी बनाए रखने, कटाव को कम करने, और मिट्टी में सूक्ष्मजीवों की संख्या को सुधारने में मदद मिलती है। ये प्रथाएँ मिट्टी की बाधा को भी कम करती हैं, जिससे मिट्टी की सेहत पर लाभकारी प्रभाव पड़ता है। मिट्टी को ठंडा रखने के लिए वृक्ष के आधार के चारों ओर जैविक गीली घास की एक परत लगाएँ। संदेश यह है कि बगीचों में कार्बनिक पदार्थ डालें, सूक्ष्मजीवों कि संख्या बढ़ाएँ, बगीचे में सॉड कल्चर रखें अर्थात बगीचे के फर्श को ढँकने के लिए घास होने दें। बता दें कि बगीचे के फर्श पर लीची वृक्षों से जो पत्तियां गिरती है उसे संगरक्षित रखने कि कोशिश करें।

लीची के पत्तों क प्राकृतिक मल्च (पलवार)

लीची के बाग में संरक्षण कृषि पद्धति

उन्नत सिंचाई विधियाँ: प्रभावी सिंचाई प्रणालियाँ बदलती वर्षा पैटर्न के प्रति अनुकूल होने और उपयुक्त विकास की परिस्थितियों को बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं। उन्नत सिंचाई विधियों, जैसे कि बगीचे में 'मध्य कैनोपी स्प्रिंकलर' का उपयोग करें, जिससे बागों में माइक्रोक्लाइमेट अनुकूलित होता है, तापमान कम होता और आर्द्रता बनी रहती है जिससे सनबर्न और फल फटन की समस्या से राहत मिलती है। वैकल्पिक रूप से तत्काल राहत के लिए कई किसान दोपहर बाद में वृक्ष छत्रक पर पानी का छिड़काव भी करते हैं जो समस्या से निदान में उपयोगी पाया गया है।

प्रशिक्षण और शिक्षा: ठेकेदारों और दुकानदारों/व्यापारियों के लिए प्रशिक्षण महत्वपूर्ण है ताकि वे आधुनिक कृषि प्रथाओं और नवीनतम प्रौद्योगिकियों के बारे में अच्छी तरह से सूचित हों। फसल प्रबंधन, पौधों की सुरक्षा, और रासायनिक उपयोग पर व्यापक शिक्षा प्रदान करने से बेहतर परिणाम प्राप्त होंगे।

सिफारिश की गई रसायनों का उपयोग: केवल सिफारिश किए गए उर्वरक और कीटनाशकों का उपयोग सुनिश्चित करना, और उन्हें आसानी से उपलब्ध कराना, फसल प्रबंधन के लिए आवश्यक है। रासायनिक अनुप्रयोगों के लिए दिशा-निर्देशों का पालन करने से मिट्टी और पौधों की सेहत पर नकारात्मक प्रभावों से बचा जा सकता है।

निष्कर्ष

बदलते मौसम और जलवायु परिस्थितियों ने लीची की खेती के समक्ष गंभीर चुनौतियाँ खड़ी कर दी हैं, जिनका सीधा प्रभाव फलों की गुणवत्ता, उत्पादकता और खेती की लागत पर पड़ रहा है। पिछले एक दशक से अधिक समय से मौसम में आई विषमता के कारण लीची के उत्पादन चक्र में बदलाव आया है, जिससे फलों के परिपक्व होने का समय कम हो गया है। यह स्थिति लीची उत्पादकों के लिए एक बड़ी चुनौती बन गई है। हालाँकि, इन चुनौतियों का सामना करने के लिए विभिन्न उपायों को अपनाया जा सकता है। किसान-संचालित बाग प्रबंधन से लेकर उन्नत सिंचाई और पोषक तत्व प्रबंधन जैसी तकनीकों को अपनाकर, लीची की खेती को बदलते मौसम के अनुसार ढाला जा सकता है। इसके साथ ही, मिट्टी और वृक्ष की सेहत का समग्र प्रबंधन, नए शोध और आधुनिक प्रौद्योगिकियों का समावेश लीची की टिकाऊ खेती की दिशा में महत्वपूर्ण कदम साबित हो सकते हैं। लीची उत्पादकों को व्यावहारिक सलाह और समुचित समर्थन की जरूरत है ताकि वे इन चुनौतियों का सामना कर सकें और अपने बागानों को दीर्घकालिक सफलता की ओर अग्रसर कर सकें। इस संदर्भ में, राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र के प्रयासों के साथ-साथ मास मीडिया की सक्रिय भूमिका महत्वपूर्ण है। मिट्टी और वृक्ष की सेहत का व्यापक प्रबंधन और नई तकनीकों को अपनाना ही लीची की खेती की सफलता की कुंजी है। यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि किसानों तक विस्तृत और व्यावहारिक सलाह पहुंचायी जाए, जिससे वे बदलते मौसम के साथ तालमेल बिठाकर अपनी फसल को संरक्षित और समृद्ध कर सकें।

3. बागों में एशियाई बुनकर चींटी (*ओइकोफिला स्मार्गडीना*): लाभकारी अभिभावक या अवांछित मेहमान?

इप्सिता सामल एवं विनोद कुमार

भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर, बिहार

'एशियाई बुनकर चींटी' या 'लाल चींटी' चींटी की एक वृक्षीय प्रजाति है जो ऑस्ट्रेलिया, इन्डोनेशिया, फिलीपींस, चीन, ताइवान और भारत सहित एशियाई देशों में सर्वव्यापी पायी जाती है। बुनकर चींटियाँ आकर्षक जीव हैं जो अपने अद्वितीय घोंसले बनाने के व्यवहार के लिए जानी जाती हैं। वे पत्तियों को एक साथ बुनकर घोंसले का निर्माण करते हैं, इसलिए उनका नाम बुनकर चींटी है। ये चींटियाँ पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं और विभिन्न कृषि कीटों के खिलाफ प्रभावी जैविक नियंत्रण एजेंटों के रूप में कार्य करती हैं। एशियाई बुनकर चींटी वैज्ञानिक रूप से *ओइकोफिला स्मार्गडीना* फैब्रिकियस (ऑर्डर हाइमेनोप्टेरा, फ़ैमिली फॉर्मिसिडे) के नाम से जाना जाता है। ये चींटियाँ पेड़ों में कई घोंसलों के साथ कालोनियाँ बनाती हैं, प्रत्येक घोंसला चींटी के लार्वा द्वारा उत्पादित रेशम का उपयोग करके एक साथ सिले गए पत्तों से बना होता है, इसलिए इसे 'ओइकोफिला' [पत्ती-घर' के लिए ग्रीक शब्द] नाम दिया गया है।

एशियाई बुनकर चींटी

आवास और व्यवहार

बुनकर चींटियाँ अत्यधिक क्षेत्रीय होती हैं और अपने शत्रुओं के खिलाफ आक्रामक रूप से अपने क्षेत्रों की रक्षा करती हैं। वे अफ्रीकी-उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों और इंडो-पैसिफिक स्थलीय क्षेत्र में प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। इनकी दो मुख्य प्रजातियाँ हैं- *ओइकोफिला लॉन्गिनोडा*, जो भूमध्यरेखीय अफ्रीका में पाई जाती हैं, और *ओइकोफिला स्मार्गडीना*, जो भारतीय उपमहाद्वीप और दक्षिण पूर्व एशिया में पाई जाती हैं। इन चींटियों के श्रमिक अधिकतर नारंगी रंग के होते हैं। श्रमिक 5-7 मिलीमीटर (0.20-0.28 इंच) लंबे होते हैं। वे लार्वा की देखभाल के लिए मधु बिंदु इकट्ठा करते हैं। प्रमुख श्रमिक (8-10 मिलीमीटर (0.3-0.4 इंच) आकार के, लंबे मजबूत पैर और बड़े जबड़े वाले होते हैं। वे घोंसला बनाते हैं, संयोजन करते हैं और उसका विस्तार करते हैं। रानियाँ आम तौर पर 20-25 मिलीमीटर (0.8-1.0 इंच) लंबी होती है और आम तौर पर हरे- भूरे रंग की होती है, इस वजह से इस प्रजाति का नाम स्मार्गडीना (लैटिन: एमराल्ड या पन्ना रंग) है।

यह एक वृक्षीय प्रजाति है, जो पेड़ों के पत्तों के बीच अपना घोंसला बनाती है। घोंसलों का निर्माण रात के दौरान किया जाता है, जिसमें बड़े श्रमिक बाहरी हिस्से में बुनाई करते हैं और छोटे श्रमिक आंतरिक संरचना का काम पूरा करते हैं। चींटियों की कॉलोनी में एक पेड़ पर कई घोंसले हो सकते हैं, या घोंसले कई आसन्न पेड़ों पर फैले हो सकते हैं; कॉलोनियाँ में संख्या पाँच लाख तक पहुँच सकती हैं। एक उदाहरण में, एक कॉलोनी ने बारह पेड़ों के बीच वितरित 151 घोंसलों पर कब्जा कर लिया। प्रत्येक कॉलोनी में, इन घोंसलों में से किसी एक में एक रानी होती है, और उसकी संतान को कॉलोनी के अन्य घोंसलों में ले जाया जाता है। एक परिपक्व कॉलोनी का औसत जीवन आठ वर्ष हो सकता है।

जैव नियंत्रण क्षमता

हाल के अध्ययनों ने कृषि कीटों को नियंत्रित करने में बुनकर चींटियों की उपयोगिता पर प्रकाश डाला है। उनकी आदतों, चारा (बेट्स) तलाशने के व्यवहार, सामाजिक संगठन और घोंसला बनाने के व्यवहार पर व्यापक डेटा उपलब्ध है। पहली सहस्राब्दी ई.पू. की आरम्भिक शताब्दियों में दक्षिण चीन के लोग अपने नींबू वर्गीय फलों के बगीचे की रक्षा के लिए बुनकर चींटियों का इस्तेमाल करते थे, एवं वे आस-पास के पेड़ों की शाखाओं में आवाजाही को समायोजित करने के लिए बांस की पट्टियाँ प्रदान करते थे ताकि चींटियों के घोंसलों और कॉलोनी के विस्तार को बढ़ावा मिले। बुनकर चींटियों को एकमात्र आर्थ्रोपॉड शिकारी माना जाता है जो रबर बागानों में उपद्रव करने वाले कीट *ल्यूप्रॉप्स ट्रिस्टिस* का शिकार करती है। इनका उपयोग काजू, खट्टे फलों और आम के बगीचों में कीटों को नियंत्रित करने के लिए सफलतापूर्वक किया गया है।

कुछ विशिष्ट उदाहरण

नीबूवर्गीय फल: ये चींटियाँ संतरे, किन्नो, नींबू, चकोतरा पेड़ और अन्य फलदार वृक्षों को नुकसान पहुँचाने वाले विभिन्न कीटों का शिकार करते हैं। बुनकर चींटियों का आक्रामक व्यवहार विभिन्न कीटों को फ्लशिंग शूट से दूर रखने में मदद करता है, क्योंकि वे अपने भोजन की आपूर्ति के लिए निम्फों को सीधे पकड़ने में सक्षम होते हैं।

आम: बुनकर चींटियाँ आम के बागों में प्राकृतिक कीट नियंत्रण प्रदान करके और पारिस्थितिकी तंत्र के स्वास्थ्य में योगदान देकर लाभकारी

भूमिका निभाती हैं। लाल चींटियों को एकीकृत कीट प्रबंधन रणनीतियों में एकीकृत करने से रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भरता कम करने और आम की खेती में टिकाऊ कृषि प्रथाओं को बढ़ावा देने में मदद मिल सकती है।

लीची: बुनकर चींटियाँ लीची के बागों को बहुमुखी लाभ प्रदान करती हैं, जो फसल स्वास्थ्य और पारिस्थितिक सद्भाव दोनों के संरक्षक के रूप में कार्य करती हैं। खतरनाक शिकारियों के रूप में, वे लीची के पेड़ों को ख़तरा पैदा करने वाले कीटों, एफिड्स से लेकर कैटरपिलर तक का अथक शिकार करते हैं, जिससे रासायनिक कीटनाशकों की आवश्यकता पर प्रभावी ढंग से अंकुश लगता है। इसके अलावा, उनकी घोंसले-बुनाई की सरल आदतें न केवल शाकाहारी कीड़ों को रोकती हैं, बल्कि पक्षियों को भी रोकती हैं, और इस तरह लीची के फलों और पत्तियों को संभावित नुकसान से बचाती हैं।

कीट नियंत्रण से परे, बुनकर चींटी कॉलोनियाँ अप्रत्यक्ष रूप से कार्बनिक पदार्थ जमा करके, उर्वरता और माइक्रोबियल गतिविधि को बढ़ावा देकर मिट्टी के स्वास्थ्य को बढ़ा सकती हैं। हालाँकि ये प्राथमिक परागणकर्ता नहीं हैं, तथापि बगीचे के भीतर उनकी गतिविधियाँ अनजाने में कुछ हद तक परागण की सुविधा प्रदान कर सकती हैं, जो समग्र पारिस्थितिकी तंत्र की गतिशीलता में योगदान करती हैं। पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने और हानिकारक कीटनाशकों पर निर्भरता कम करके, बाग प्रबंधन में बुनकर चींटियों का एकीकरण कीट नियंत्रण के लिए एक स्थायी दृष्टिकोण का प्रतीक है, कृषि लचीलापन और जैव विविधता संरक्षण को बढ़ावा देता है। कुल मिलाकर, बुनकर चींटियाँ प्राकृतिक कीट नियंत्रण प्रदान करके, शाकाहारी जीवों से पेड़ों की रक्षा करके, मिट्टी के स्वास्थ्य में योगदान देकर और पारिस्थितिकी तंत्र संतुलन को बढ़ावा देकर लीची के बागों में एक मूल्यवान भूमिका निभाता है। टिकाऊ कृषि हेतु इन चींटियों को बगीचे प्रबंधन प्रथाओं में एकीकृत करने से रासायनिक कीट नियंत्रण विधियों के पर्यावरणीय प्रभाव को कम करते हुए स्थिरता और उत्पादकता में वृद्धि हो सकती है।

लीची वृक्ष पर पर एशियाई बुनकर चींटी का घोंसला

लीची वृक्ष पर एशियाई बुनकर चींटी की मेजबान खोजने की (फ़ोराजिंग) गतिविधियाँ

नारियल: नारियल बग (*स्यूडोटथेराप्टस वाई*) को नियंत्रित करने के लिए बुनकर चींटियों का चयनात्मक रूप से उपयोग किया जाता है। *ओइकोफिला लॉन्गिनोडा* नारियल बग का एक प्राकृतिक शत्रु है, एक ऐसा कीट जिसके कारण तंजानिया में नारियल की67% फसल बर्बाद हो गई। बुनकर चींटी नारियल के पेड़ों के बीच रहने वाली चींटियों की अन्य प्रजातियों के साथ प्रतिस्पर्धा करती है, और कभी-कभी जमीन पर स्थित *फीडोल मेगासेफला* द्वारा विस्थापित हो जाती है। हालाँकि,

जैविक कीट नियंत्रण एजेंट के रूप में बुनकर चींटी काफी अधिक प्रभावी है, और *पी. मेगासेफला* को चुनिंदा रूप से नियंत्रित करने के लिए चारे (बेट्स) का उपयोग किया जाता है, जिससे बुनकर चींटियाँ पनपें और नारियल बग को प्रभावी ढंग से नियंत्रित कर सकें।

पश्चिमी अफ्रीकी वृक्ष बाग: *ओइकोफिला लॉन्गिनोडा* पश्चिम अफ्रीकी बागों में और विस्तार से, उप-सहारा अफ्रीका के भीतर वन और सवाना पारिस्थितिकी तंत्र में भी फल मक्खियों के खिलाफ जैविक नियंत्रण एजेंट के रूप में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ये बुनकर चींटियाँ बारहमासी उष्णकटिबंधीय वृक्ष फसलों में आर्थ्रोपोड के सबसे प्रभावी और कुशल शिकारियों में से एक हैं। उनकी उपस्थिति उनके द्वारा उत्पादित अर्ध-रसायन (सेमीओकेमिकल) के कारण शाकाहारी कीटों, विशेष रूप से टेफ्रिटिड मादा फल मक्खियों के लिए एक निवारक के रूप में भी काम करती है। जैविक और टिकाऊ रूप से-प्रबंधित फलों और मेवों (नट्स) के लिए उभरते अफ्रीकी बाजारों ने बुनकर चींटियों के उपयोग में रुचि को प्रोत्साहित किया है। उष्णकटिबंधीय वनों और सवानाओं का संरक्षण पारिस्थितिक और पर्यावरणीय रूप से महत्वपूर्ण है और *ओइकोफिला लॉन्गिनोडा* के संरक्षण के लिए भी आवश्यक है।

जैव नियंत्रण के लिए बुनकर चींटियों का उपयोग करने के फायदे

- **रासायनिक उपयोग में कमी:** बुनकर चींटियों के प्रकृतिक शिकारी होने के कारण, रासायनिक कीटनाशकों की आवश्यकता बहुत कम हो जाती है, जिससे खेती के लिए अधिक पर्यावरण अनुकूल दृष्टिकोण सामने आया है।
- **सतत कीट प्रबंधन:** कीटनाशकों के विपरीत, जिनके प्रति कीट प्रतिरोध विकसित कर सकते हैं, बुनकर चींटियाँ प्रतिरोध निर्माण के जोखिम के बिना दीर्घकालिक समाधान प्रदान करती है।
- **उन्नत परागण:** ये चींटियाँ परागण प्रक्रिया में भी योगदान दे सकती है, अप्रत्यक्ष रूप से पौधों की प्रजनन सफलता में मदद करती हैं।
- **आर्थिक लाभ:** किसान कीटनाशकों की लागत बचा सकते हैं और फसल की उच्च गुणवत्ता के कारण संभावित रूप से अधिक कमाई भी कर सकते हैं।

चुनौतियाँ और विचार

- **चींटी प्रबंधन:** चींटियों की आबादी का सही संतुलन बनाए रखना महत्वपूर्ण है। बहुत कम अप्रभावी हो सकते हैं, जबकि बहुत अधिक उन्हें उपद्रव का कारण बना सकते हैं।
- **फसल विशिष्टता:** बुनकर चींटियों से सभी फसल को लाभ नहीं हो सकता है; यह पहचानने के लिए शोध की आवश्यकता है कि कौन सी फसलें सबसे अधिक अनुकूल है।
- **किसान शिक्षा:** किसानों को बुनकर चींटियों को प्रभावी ढंग से और सुरक्षित रूप से प्रबंधित करने के बारे में शिक्षित करने की आवश्यकता है।

यह चींटी अपने घोंसले के आसपास के क्षेत्र से हानिकारक कीटों को दूर रखता है, जिससे पौधों को नुकसान पहुँचानेवाले कीटों से सुरक्षा मिलती है। इसके अलावा, यह चींटी मिट्टी को हवादार और उपजाऊ बनाने में भी मदद करती है, जिससे पौधों की जड़ों को बेहतर विकास के लिए आवश्यक ऑक्सीजन मिलती है। दूसरी ओर, बुनकर चींटी के कुछ नकारात्मक प्रभाव भी होते हैं। यह चींटी पत्तियों को नुकसान पहुंचाकर और उन्हें सिलकर अपने घोंसले बनाती है, जिससे पौधों की वृद्धि और फोटोसिंथेसिस प्रक्रिया प्रभावित हो सकती है। इसके अलावा, यदि चींटी की संख्या अधिक हो जाए, तो यह पौधों के लिए अतिरिक्त बोझ बन सकती है।

निष्कर्ष

बुनकर चींटियाँ न केवल अपने पारिस्थितिक तंत्र में उल्लेखनीय हैं बल्कि टिकाऊ कृषि में मूल्यवान सहयोगी के रूप में भी काम करती हैं। बुनकर चींटियाँ कृषि कीटों से बचाव में रासायनिक कीटनाशकों का एक आशाजनक विकल्प प्रदान करती हैं। जैव नियंत्रण में उनकी भूमिका प्राकृतिक कीट प्रबंधन समाधानों की क्षमता का प्रमाण है। जैसे-जैसे कृषि टिकाऊ प्रथाओं कि ओर बढ़ेगा, बुनकर चींटियों का उपयोग एकीकृत कीट प्रबंधन कार्यक्रमों का एक मानक घटक बन सकता है, जिससे पर्यावरण और अर्थव्यवस्था दोनों को लाभ होगा। पारिस्थितिक संरक्षण और कृषि उत्पादकता के बीच संतुलन नाजुक है, और बुनकर चींटियाँ इस संतुलन को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। किसानों को शिक्षित करना और कीट नियंत्रण के लिए बुनकर चींटियों के उपयोग के लाभों को बढ़ावा देना इनके व्यापक रूप से अपनाने के लिए आवश्यक है। कुल मिलाकर, बुनकर चींटियाँ बगीचे के पारिस्थितिकी तंत्र में जैव विविधता को संरक्षित करते हुए पेड़ों के स्वास्थ्य और उत्पादकता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। अतः, बागों में एशियाई बुनकर चींटी की उपस्थिति एक लाभकारी अभिभावक के रूप में कार्य करती है।

4. फसलों की सहनशीलता बढ़ाने के लिए जैव-जीवनाशक और जैव-प्रोत्साहक

विनोद कुमार, इप्सिता सामल, लोकेश कुमार एवं उपज्ञा साह

भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर, बिहार

प्राकृतिक खेती में पर्यावरण-अनुकूल, टिकाऊ कृषि सामग्री के उपयोग पर जोर दिया जाता है, जो मिट्टी के स्वास्थ्य और जैव विविधता को बनाए रखते हुए फसलों की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाते हैं। इस दृष्टिकोण में, पौधों पर आधारित जैव-जीवनाशक और जैव-प्रोत्साहक कीट संक्रमण, रोग, और सूखा, गर्मी, तथा लवणता जैसी अजैविक समस्याओं को हल करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। औषधीय पौधों से प्राप्त ये आसान कीट नियंत्रण और फसल की शक्ति को प्राकृतिक रूप से बढ़ाने का दोहरा लाभ प्रदान करते हैं।

जैव जीवनाशक के रूप में परम्परागत औषधीय पौधों के अर्क

नीम (*अजेडीरेक्टा इन्डिका*)

- **मुख्य घटक:** अजेडिरेक्टिन, एक यौगिक जो कीटों के खाने, त्वचा त्याग और प्रजनन-चक्र को बाधित करता है।
- **लक्षित कीट:** एफिड्स, सफेद मक्खी, कैटरपिलर और सूत्र कृमि।
- **प्रयोग:** नीम का तेल और नीम के बीज का अर्क पानी में मिलाकर फसलों पर छिड़काव किया जाता है। यह कीटनाशक और कीट विकर्षक दोनों के रूप में कार्य करता है, लेकिन लाभदायक कीटों को नुकसान नहीं पहुँचाता है।

नीम की निम्बोली

करंज (*पोंगेमिया पिनेन्नटा*)

- **मुख्य घटक:** फ्लेवोनॉइड्स और एल्कलॉइड्स, जो कीटनाशक और रोगाणुरोधी गुण प्रदान करते हैं।
- **लक्षित कीट:** लीफ माइनर, मीलीबग्स और अन्य कीट।
- **प्रयोग:** करंज के तेल को पानी और हल्के डिटर्जेंट के साथ मिलाकर फसलों पर छिड़काव किया जाता है।

करंज की फली

गूमा (*ल्यूकस एस्पेरा*)

- **मुख्य घटक:** गूमा में प्राकृतिक कीटनाशक गुण होते हैं, जो कीटों को दूर भगाने और फसल की सुरक्षा में सहायक हैं। इसमें विभिन्न जैव-सक्रिय यौगिक होते हैं, जैसे फ्लेवोनॉइड्स और टेरपिनोइड्स।
- **लक्षित कीट:** विशेष रूप से दलहन और सब्जी वाली फसलों में लगने वाले कीटों को नियंत्रित करने में प्रभावी। चूसने वाले कीट जैसे एफिड्स और थ्रिप्स में भी प्रभावी।
- **प्रयोग:** गूमा की पत्तियों को पानी में भिगोकर या उबालकर उनका अर्क तैयार किया जाता है।

गूमा का पौधा

हाथीसूड़ (*हेलिओट्रोपियम इंडिकम*)

- **मुख्य घटक:** इसमें कवकनाशी और जीवाणुनाशी यौगिक होते हैं, जैसे कि पाइरोलिज़िडिन एल्कलॉइड्स, जो रोगजनकों और कीटों को नियंत्रित करने में मदद करते हैं।
- **लक्षित कीट:** चूसने वाले और चबाने वाले कीट, जैसे एफिड्स और माइट्स। फसल में होने वाले कवक और बैक्टीरियल रोग।
- **प्रयोग:** हाथीसूड़ की पत्तियों को कुचलकर या उबालकर एक अर्क बनाया जाता है।

हाथीसूड़ का पौधा

कैटनिप (*नेप्टेटा कटरिया*)

- **मुख्य घटक:** नेपेटालैक्टोन, जो कीट विकर्षक के रूप में जाना जाता है।
- **लक्षित कीट:** पिस्सू, एफिड्स और मच्छर।
- **प्रयोग:** कैटनिप की पत्तियों और तनों को पानी में उबालकर एक अर्क तैयार किया जाता है, जिसे कीट विकर्षक स्प्रे के रूप में उपयोग किया जाता है।

कैटनिप

धतूरा (*धतूरा स्ट्रैमोनियम*)

- **मुख्य घटक:** एट्रोपीन और स्कोपोलामाइन जैसे एल्कलॉइड, जो कीटों के लिए विषाक्त होते हैं।
- **लक्षित कीट:** विभिन्न कीटों के कैटरपिलर और एफिड्स।
- **प्रयोग:** धतूरा की पत्तियों का पानी अर्क तैयारकर स्प्रे घोल तैयार किया जाता है, जो पत्तियों को चबाकर खानेवाले कीटों से फसल की रक्षा करता है।

धतूरा के फूल एवं फल

आक (*कैलोट्रोपिस प्रोसेरा*)

- **मुख्य घटक:** कार्डियक ग्लाइकोसाइड्स, जो लेटेक्स और पत्तियों में पाए जाते हैं और कीटों के लिए विषाक्त होते हैं।
- **लक्षित कीट:** टिड्डे, फुदकने वाले कीट और दीमक।
- **प्रयोग:** आक की पत्तियों का काढ़ा बनाकर फसलों पर छिड़काव किया जाता है, जिससे कीट का दबाव कम होता है।

आक का पौधा

लहसुन (*एलियम सैटिवम*)

- **मुख्य घटक:** एलिसिन, एक सल्फर आधारित यौगिक जो कीटों को भगाता है और एक कवक-विनाशक पदार्थ के रूप में कार्य करता है।
- **लक्षित कीट:** एफिड्स, थ्रिप्स, मकड़ी (माइट्स) और कवकजनित रोग।
- **प्रयोग:** लहसुन की कलियों को पानी में भिंगोकर अर्क बनाया जाता है, जिसे पौधों पर सीधे छिड़का जा सकता है।

लहसुन की कलियों

बड़ी दूधी (*यूफोरबिया हिर्टा*)

- **मुख्य घटक:** इसमें एल्कलॉइड्स, फ्लेवोनोइड्स और टैनिन होते हैं, जिनमें कीटनाशी गुण पाए जाते हैं।
- **लक्षित कीट:** मच्छरों के लार्वा, एफिड्स और कुछ फफूंदजनित रोगजनकों पर प्रभावी।
- **प्रयोग:** डेकोक्शन या अर्क का छिड़काव फसलों के कीट प्रबंधन और स्थिर पानी में मच्छर नियंत्रण के लिए किया जाता है।

बड़ी दूधी का पौधा

लेंटाना (*लैंटाना कैमरा*)

- **मुख्य घटक:** लैंटाडीन ए, बी और आवश्यक तेलों से भरपूर, जिनमें कीटनाशी और रोगाणुरोधी गुण होते हैं।
- **लक्षित कीट:** व्हाइटफ्लाई, एफिड्स और सूत्रकृमियों पर प्रभावी।
- **प्रयोग:** पत्तियों के अर्क या तेल का पर्णीय छिड़काव या मिट्टी में डालकर कीटों को भगाने के लिए उपयोग किया जाता है।

पौधों पर आधारित एक जैव-कीटनाशक का निर्माण

आवश्यक सामग्री: गौमूत्र या पानी - 10 लीटर, नीम की पत्तियाँ - 1 किग्रा, धतूरा की पत्तियाँ - 400–500 ग्राम, आक (मदार) की पत्तियाँ - 400–500 ग्राम, कैटनिप (विलायघर बूटी) की पत्तियाँ और फूल - 500 ग्राम, करंज की पत्तियाँ - 500 ग्राम, गूमा की पत्तियाँ - 500 ग्राम, हाथीसूड़ की पत्तियाँ - 500 ग्राम एवं लहसून – 25 ग्राम (कुचला हुआ)

तैयारी की विधि: एक ड्रम में 10 लीटर गौमूत्र या पानी लें। नीम, धतूरा, आक (मदार), कैटनिप विलायघर बूटी), करंज, गूमा और हाथीसूड़ पौधों की कटे या कुचले हुए पत्ते गौमूत्र या पानी में डालें। अतिरिक्त रूप से, नीम के फल, धतूरा के बीज और करंज के बीजों को कुचलकर मिश्रण में डाल सकते हैं। इसमें 25 ग्राम कुचला हुआ लहसून मिलायेँ ड्रम को एक सूती कपड़े से ढकें, रस्सी से कसकर बांधें और इसे 18 दिनों के लिए छाये में छोड़ दें। 18 दिनों के बाद मिश्रण को कपड़े से छान लें। यह पौधों पर आधारित जैव-कीटनाशक घोल उपयोग के लिए तैयार है। 10 लीटर घोल को 200 लीटर पानी में मिलायेँ (3–5% अनुपात, अर्थात् प्रति लीटर पानी में 30–50 मिलीलीटर घोल) और इसे फसलों पर छिड़काव करें।

औषधीय पौधों के अर्क जैव-प्रोत्साहक के रूप में

जैव-जीवनाशक के रूप में उपयोग के साथ-साथ, औषधीय पौधों के अर्क फसल वृद्धि को बढ़ावा देने, तनाव सहनशीलता में सुधार, और समग्र फसल स्वास्थ्य को बढ़ाने के लिए जैव-प्रोत्साहक (जैव-उत्तेजक) के रूप में भी कार्य करते हैं। नीम की खल्ली के उपयोग से मिट्टी की उर्वरता बढ़ती है और जड़-क्षेत्र (राइजोस्पीयर) में सूक्ष्मजीव गतिविधि को बढ़ावा मिलता है। नीम का तेल जड़ वृद्धि, जल धारण क्षमता और फसल की कुल शक्ति को बढ़ाता है। लहसुन के अर्क पौधों के चयापचय को उत्तेजित करके एंटीऑक्सीडेंट एंजाइम गतिविधि को बढ़ाते हैं, जिससे फसलें उच्च तापमान या सूखे जैसे पर्यावरणीय कारकों के कारण होने वाले ऑक्सीडेटिव तनाव से लड़ने में सक्षम होती हैं। करंज का तेल और उसके अर्क फसल वृद्धि को उत्तेजित करते हैं, प्रकाश संश्लेषण में सुधार करते हैं, पोषक तत्वों के अवशोषण को बढ़ाते हैं, और विशेष रूप से खारे क्षेत्रों में तनाव सहनशीलता को बढ़ाते हैं। गूमा और हाथीसूड़ के अर्क क्लोरोफिल सामग्री, सापेक्ष जल सामग्री, और झिल्ली स्थिरता सूचकांक जैसे शारीरिक मापदंडों में सुधार करते हैं। इनके पर्णीय छिड़काव से पोषक तत्वों का अवशोषण बढ़ता है, जिससे फसल उत्पादन में वृद्धि होती है। धतूरा और आक शारीरिक मार्गों को सक्रिय करके और जड़ विकास को बढ़ावा देकर तनाव शमन में योगदान करते हैं। बड़ी दूधी के अर्क को पर्णीय छिड़काव या बीज उपचार के रूप में प्रयोग किया जाता है, जिससे विकास और तनाव सहनशीलता बढ़ती है।

आर्थिक व्यवहार्यता और लाभ-लागत विश्लेषण

लागत: पौधों पर आधारित जैव-जीवनाशक और जैव-प्रोत्साहक की तैयारी की लागत सामान्यतः कम होती है। उदाहरण के लिए, नीम बीज कर्नेल और अन्य मिश्रित औषधीय पौधों के अर्क की लागत प्रति हेक्टेयर ₹100–200 के बीच होती है।

उपज लाभ: गूमा और हाथीसूड़ जैसे जैव- प्रोत्साहकों पर किए गए अध्ययनों में तनाव की स्थिति में 10–15% तक की उपज वृद्धि पाई गई है। नीम और करंज के उपयोग से कीट क्षति 30% तक कम हो जाती है, जिससे लागत में काफी बचत होती है।

लाभ-लागत अनुपात: नीम तेल या गूमा अर्क के उपयोग से लाभ-लागत अनुपात 8 से 10 के बीच होता है, जो इसे अत्यधिक लाभदायक बनाता है।

दीर्घकालिक बचत: रासायनिक जैवनाशकों और उर्वरकों की आवश्यकता को कम करके किसानों की उपादान (इनपुट) लागत बचती है। इसके अलावा, पौधों पर आधारित घोल मिट्टी स्वास्थ्य और जैव विविधता को बेहतर बनाते हैं, जिससे आने वाले मौसमों में उत्पादकता में सुधार होता है।

निष्कर्ष

औषधीय पौधों जैसे नीम, लहसून, करंज, गूमा, हाथीसूड, धतूरा, आक और कैटनिप से प्राप्त जैव-जीवनाशक और जैव-प्रोत्साहक पारम्परिक कृषि इनपुट्स के लिए स्थायी, पर्यावरण-अनुकूल विकल्प प्रदान करते हैं। ये प्राकृतिक समाधान फसल की उपज और पोषण गुणवत्ता को बढ़ाने में सहायक होते हैं। किसानों को इन तरीकों को अपनाने के लिए सशक्त बनाना पर्यावरणीय दृष्टिकोण से लाभकारी और आर्थिक रूप से व्यावहारिक होगा।

5. बीज प्राइमिंग: अंकुरण गुणता एवं उत्पादकता बढ़ाने की कारगर तकनीक

कविता[1], विनोद कुमार[2] एवं संगीता कुमारी[3]

[1]तिरहुत कृषि महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार, [2]भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर, बिहार, [3]कृषि अनुसंधान संस्थान, पटना, बिहार

कृषि के लिए बीजों का अच्छा अंकुरण महत्वपूर्ण है। बुआई के पश्चात खेतों में पौधों की शुरुआती सफल स्थापना के लिए बीजों का कुशल एवं एक समान रूप से उगना अच्छी फसल के लिए आवश्यक है। विषम तापमान तथा वातावरण में बीजों का उगाव अपेक्षाकृत कम होकर एक समान नहीं रह पाता। परिणामस्वरूप उत्तर भारत के सब्जी किसान बसंतकालीन फसल की अगेती बुआई हेतु सामान्य से अधिक बीज दर अपनाते हैं। अधिक आय की आशा में कृषक समयपूर्व बुवाई करते हैं। कम गुणतायुक्त बीजों की बुवाई उपरांत उगाव प्रतिशत सुधारने में बीज प्राइमिंग की विधि उपयोगी पायी गयी है। इससे पहले कि बीज प्राइमिंग की बात करें, हमें बीज की संरचना एवं बीज अंकुरण को समझना होगा।

बीज की संरचना एवं अंकुरण

बीज के तीन प्राथमिक भाग होते हैं- बीजावरण या बीज चोल, बीज पत्र और भ्रूण। किसी बीज को तोड़कर देखने से ये तीनों संरचनायेँ स्पष्ट होती हैं। बीज चोल बीजों के ऊपर एक खोलनुमा परत होती है। यह बीज का सुरक्षा कवच होता है जो उसे जल्द नष्ट होने से बचाता है। बीजावरण के अंदर एक या दो हिस्सों में बंटा हुआ दाल जैसी रचना, बीजपत्र होता है। यह भ्रूण से पौधा बनने की प्रारंभिक अवस्था में पौधे के लिए भोजन प्रदान करता है। कुछ पौधों के बीज में दो बीजपत्र होते हैं- जैसे चना, अरहर, मटर, सेम आदि। कुछ पौधों के बीज में एक ही बीजपत्र होता है- जैसे गेहूँ, धान, मक्का आदि। बीजपत्र के अंदर उसकी छोटी नाक जैसी नुकीली रचना उसका भ्रूण होती है। इसी से अगला पौधा विकसित होता है। अंकुरण के समय भ्रूण के ऊपरी सिरे पर प्रांकुर बनता है और निचले सिरे में अंदर की ओर जड़ों के रूप में विकसित होता मुलांकुर बनता है।

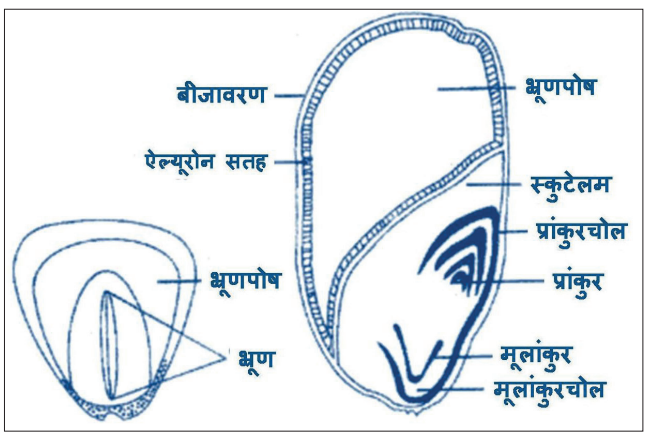

एकबीजपत्री बीज की संरचना

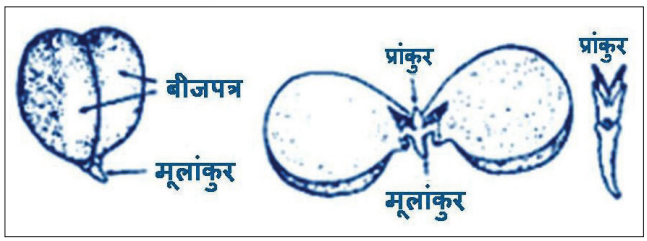

द्विबीजपत्री बीज की संरचना

बीज प्राइमिंग क्या है ?

बीज प्राइमिंग, बीजोपचार की एक सस्ती और आसान प्रक्रिया है। बीज प्राइमिंग बीजों के नियंत्रित जलयोजन की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में बीजों को उनकी अंकुरण पूर्व चयापचय गतिविधि को आगे बढ़ने तक नियमित जलयुक्त किया जाता है। परन्तु सूक्ष्म तरुमूल को प्रस्फुटित होने से रोका जाता है। बीजों की प्राइमिंग हेतु विभिन्न विधियाँ अपनाई जाती है। इसमें बीजों में प्राथमिक मुलांकूर को बीजावरण से बाहर निकलने से रोका जाता है। बीजों को बोने से पूर्व सुषुप्तावस्था से जगाया जाता है।

बीज प्राइमिंग तकनीकों के पीछे की अवधारणायेँ

बीज को बोने से लेकर उसके प्रत्यारोपण तक किसी भी समय अगर अंकुरण के लिए कोई अनुकूलन नहीं होता है, तो उपेक्षित अंकुरण के कारण क्षति होती है। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अंकुरण को क्षति होती है। रोपाई का समय भी समाप्त हो जाता है। यदि फसल देर से बोया जाता है, तो फसलों को अनुकूल मौसम के लिए कम समय मिलेगा जो उपज को प्रभावित करता है। बीज प्राइमिंग तकनीक में बीज का अंकुरण शामिल होता है। चूंकि बीज सीधे पानी में भिंगोये जाते हैं, इसलिए यह जमीन से पानी प्राप्त करने के लिए आवायक समय बचाता है। बीज प्राइमिंग से चूँकि सभी बीजो का अंकुरण एक समान होता है. इसलिए अधिक से अधिक बीजों को एक साथ चयापचय और अपघटन द्वारा एकसमान ही अंकुर मिलता है।

बीज प्राइमिंग विधियाँ

हाइड्रोप्राइमिंग: बीजों को बुवआई से पहले, फसल और प्रजाति के गुणानुसार पूर्व निश्चित काल तक जल में भिंगोया जाता है। भींगने का समय पूरा होने पर, बीज सतह को कपड़े की परत में दबाकर या फिर खुली धूप में सूखाया जाता है। सुरक्षित सीमा की जानकारी होने पर किसान अपना बीज हाइड्रोप्राइम कर सकते हैं। इन सुरक्षित सीमाओं की गणना इस सावधानी से की जाती है कि जल से विलग कर देने पर इनकी अंकुरण प्रक्रिया चालू न रहे।

ओस्मो प्राइमिंग: बीजों की ओस्मो प्राइमिंग बीजों को परिक्षण नली या सिलिंडर में -0.5 से -1.0 एम.पी.ए. तक के पॉलीइथिलीन ग्लाइकोल (पीईजी 6000) घोल में भिंगोया जाता है। प्राइमिंग प्रक्रिया के दौरान एक शीशे की नली द्वारा, जो एक रबर पाइप के द्वारा अक्वेरियम पंप से जुड़ी होती है, बीजों में वायु संचार किया जाता है। प्राइमिंग 2 से 7 दिन के समय तक एक स्थिर तापमान (20° से 25° से.) पर किया जाता है। स्थिर आयतन बनाये रखने के लिए प्राइमिंग पात्र में आवश्यकतानुसार आसवित जल दिया जाता है। इस प्रकार धोल की जल शक्ति स्थिर रहती है। प्राइमिंग प्रक्रिया काल पूर्ण होने पर बीजों को उपरोक्त धोल से निकाल कर जल से प्रक्षालित करके उनकी सतह को तत्काल सूखा लिया जाता है।

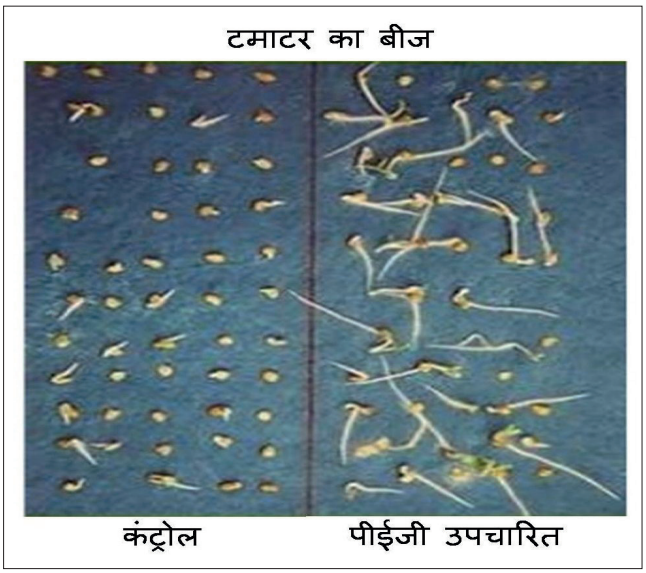

ओस्मो प्राइमिंग का टमाटर के बीज अंकुरण पर प्रभाव

हैलो प्राइमिंग: बीजों को एक निश्चित समय तक निश्चित तापमान के लवणीय घोल में भिंगोकर हैलो प्राइम किया जाता है। सामान्यतया पौटाशियम नाइट्रेट, कैल्सियम नाइट्रेट और मैग्नीशियम नाइट्रेट के 10 से 30 मिली मोलर सान्द्रता वाले घोल प्रयोग में लाये जाते हैं। भिंगोने का समय पूर्ण होने पर बीजों को घोल से निकाल कर सूखा लिया जाता है।

सॉलिड मैट्रिक्स प्राइमिंग: सॉलिड मैट्रिक्स प्राइमिंग हेतु 100 ग्राम बीज की मात्रा को 200 ग्राम वर्मिक्युलाइट जिसमें 250 मिलीलीटर जल मिला होता है, भिंगोया जाता है। वर्मिक्युलाइट तथा बीजों को अच्छी तरह मिश्रित करके, एक प्लास्टिक थैली में बंद करके उन्हें निशिचत तापमान पर निशिचत काल तक रख (इन्कूबेट) देते हैं। इन्कूबेशन काल की समाप्ती पर बीजों को छानकर मूल नमी तक सूखा लिया जाता है। मूल नमी तक सूखाने के उपरान्त प्राइम शुदा बीजों को बोया जाता है। बुआई में विलम्ब होने पर, प्राइम शुदा बीजों को कई दिनों तक सूखे स्थान पर संचित किया जा सकता है।

रेत मैट्रिक प्राइमिंग: यह भी एक सॉलिड मैट्रिक्स प्राइमिंग है। इसके लिये नियत जल धारण क्षमता (डबल्यू.एच.सी.) वाली नम रेत के साथ बीजों को मिला लें और इसे छिद्रित प्लास्टिक कवर्स में रखकर समान जलधारण क्षमता वाले नम रेत से भरे ट्रे में दबाकर रख दें। विभिन्न जल धारण क्षमता वाली रेत का निर्माण इस प्रकार करते हैं: 30% डब्ल्यूएचसी- 90 मिली लीटर पानी/ किलो सूखी रेत, 40% डब्ल्यूएचसी- 120 मिलीलीटर पानी/ किलोग्राम सूखी रेत, 60% डब्ल्यूएचसी - 180 मिलीलीटर पानी/ किलोग्राम सूखी रेत, 80% डब्ल्यूएचसी- 240 मिली पानी/ किलोग्राम सूखी रेत, 100% डब्ल्यूएचसी- 300 मिलीलीटर पानी/ किलोग्राम सूखी रेत।

तालिका: 1. विभिन्न सब्जी फसलों का बीज प्राइमिंग

फसल बीज	प्राइमिंग विधि	विवरण
करेला	हाइड्रोप्राइमिंग	गीले मखमल कपड़े में 20° सेल्सियस तापमान पर 48 घंटे तक लपेट कर रखें
	ओस्मोप्राइमिंग	मैनीटोल रसायन (-1.0 एम.पी.ए.) में 25° सेल्सियस तापमान पर 3 दिन भिंगोयें
	सॉलिड मैट्रिक्स प्राइमिंग	वर्मिक्युलाइट मृदा में 20° सेल्सियस तापमान पर 48 घंटे रखें
भिण्डी	सॉलिड मैट्रिक्स प्राइमिंग	वर्मिक्युलाइट मृदा में 20° सेल्सियस तापमान पर 20 घंटे रखें
	हाइड्रोप्राइमिंग	जल में 20° सेल्सियस तापमान पर 20 घंटे भिंगोयें
मिर्च	सॉलिड मैट्रिक्स प्राइमिंग	वर्मिक्युलाइट मृदा में 20° सेल्सियस तापमान पर 48 घंटे रखें
टमाटर	हैलो प्राइमिंग	पोटैशियम नाइट्रेट 15 मिली मोलर में 20° सेल्सियस तापमान पर 20 घंटे भिंगोयें
शिमला मिर्च, भिण्डी	ओस्मोप्राइमिंग	24 घंटे के लिए 5% पीईजी के साथ ऑस्मो-प्राइमिंग
मटर	हाइड्रोप्राइमिंग	जल में सामान्य तापमान पर 12 धंटे भिगोयें
पपीता	पी.जी.आर. (वृद्धि नीयामक हॉरमोन)	जी.ए.$_3$ (GA_3) 15 मिली मोलर में 24 घंटे भिंगोयें

तालिका: 2. फसल एवं बीज प्राइमिंग तकनीक

फसल	बीज प्राइमिंग तकनीक	अवधि
टमाटर	हाइड्रो प्राइमिंग	48 घंटे
गाजर	हाइड्रो प्राइमिंग	36 घंटे
चुकंदर, मूली, सरसों	हाइड्रो प्राइमिंग	12 घंटे
बैंगन, मिर्च, प्याज	रेत मैट्रिक प्राइमिंग 80% डब्ल्यूएचसी	3 दिन
भिण्डी	रेत मैट्रिक प्राइमिंग 60% डब्ल्यूएचसी	3 घंटे
धान	रेत मैट्रिक प्राइमिंग 3.8% नमी (38 मिली लीटर जल/ किलोग्राम रेत) 18° सेल्सियस	3 दिन

बायोप्राइमिंग: बायोप्राइमिंग या जैवप्राइमिंग बीज उपचार की एक नई तकनीक है जो रोग नियंत्रण के जैविक (बीज की रक्षा के लिए लाभकारी जीव के साथ बीज का उपचार) और पौध शारीरिक क्रियाविधि (सीड हाइड्रेशन) पहलुओं को एकीकृत करती है। हाल के वर्षों में इसे कई बीज- और मिट्टी-जनित रोगजनकों को नियंत्रित करने के लिए एक वैकल्पिक विधि के रूप में उपयोग किया जाने लगा है। बीज बोने से पहले खास जैविक घोल में बीजों को लथ-पथ कर छाये में सूखा लिया जाता है।

ट्राईकोडर्मा से बीज प्राइमिंग

ट्राईकोडर्मा से बीज प्राइमिंग करने हेतु सर्वप्रथम गाय के गोबर का गारा (स्लरी) बनायें। प्रति लीटर गारे में 10 ग्राम ट्राईकोडर्मा उत्पाद मिलाएँ और इसमें लगभग एक किलो बीज डुबो कर 12 घंटे के लिए रखें। उसके बाद बीज बाहर निकाल कर छाये में थोड़ी देर सूखने दें, फिर बुआई करें। ये प्रक्रिया खासकर अनाज, दलहन और तिलहन फसलों की बुआई से पहले करना उपयुक्त होता है। बीज बोने के पूर्व बीज को पानी में भिंगोकर 12 घंटे के लिए लथ-पथ करके रखें/ सोखें। इसके बाद ट्राईकोडर्मा उत्पाद 10 ग्राम प्रति किग्रा बीज की दर से मिलाएँ। फिर, बीज को एक ढेर के रूप में रखें। उच्च आर्द्रता को बनाए रखने के लिए एक नम जूट बोरी के साथ ढेर को कवर करें/ढँक दें। इस तरह 48 घंटे के लिए लगभग 25-32 डिग्री सेल्सियस तापक्रम और उच्च आर्द्रता में बीज को सेते हैं। इससे ट्राईकोडर्मा का बीज की सतह पर चारों ओर एक सुरक्षात्मक परत बन जाता है। अब बीज नर्सरी में बोने के लिए तैयार है।

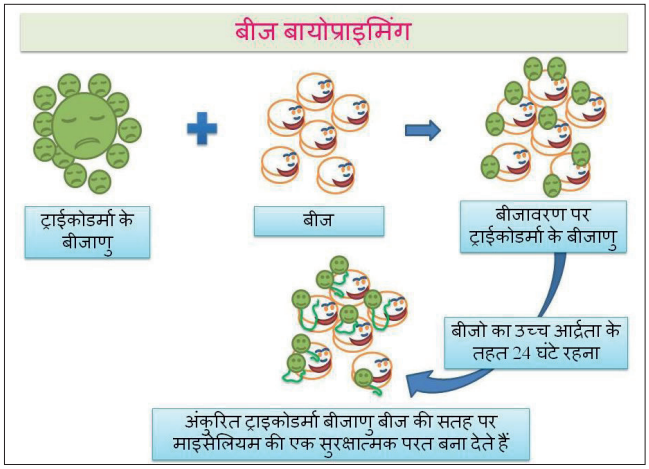

ट्राईकोडर्मा से बीज बायोप्रिमिंग का आरेखीय निरूपण

बीज प्राइमिंग के लाभ

- बुआई उपरान्त प्रक्षेत्र-मृदा में तीव्र एवं एक साथ उगाव
- उत्तम पौध औज एवं जडों का अच्छा विकास
- विषम वातावरणीय तापमान पर भी समुन्नत पौध जमाव
- अंकुरण की गति और एकरूपता में बढ़ाव
- पानी और तापमान तनाव के प्रति प्रतिरोधकता में सुधार
- छोटे बीज के लिए अत्यधिक उपयुक्त
- स्वस्थ और मजबूत अंकुर- पौधों की मजबूत वृद्धि, बीमारियों और कीटों की कम प्रसार, बीमारियों और कीटनाशकों की कम लागत, कम श्रम लागत, कम उत्पादन लागत
- थोड़े समय में व्यापक विकास (गेहूँ, धान, मक्का आदि में)
- सूखी खरीफ और रबी फसलों के लिए बहुत उपयोगी
- जल्दी (देर), देर से और निर्बाध बुआई का जोखिम कम करना - परिस्थितियों पर काबू पाना
- उत्तम फसल विकास तथा उपज

सावधानियां

- बुआई से बहुत पहले बीज प्राइमिंग नहीं करना चाहिए। यह रात में किया जाना चाहिए, आमतौर पर बुआई के दिन।
- पानी का तापमान फसल के अनुसार बदलता रहता है। अनावश्यक रूप से गर्म या गर्म पानी के उपयोग से बचें।
- दूषित पानी के कारण बीज संक्रमित और बर्बाद हो जाते हैं।
- पानी में क्लोरीन, ब्लीचिंग या अन्य रासायनिक दवाओं का उपयोग न करें।

6. बोर्डो मिश्रण बनाने की घरेलु तकनीक

रामाशीष कुमार[1], सुरभि सुमन[2] एवं सोमेश कुमार[1]

[1]भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र, मुजफ्फरपुर, बिहार, [2]उच्च माध्यमिक विद्यालय, बबुरबन्ना, परवलपुर, नालंदा, बिहार

बोर्डो मिश्रण (जिसे बोर्डो मिक्स भी कहा जाता है) कॉपर सल्फेट ($CuSO_4$) और बिना बुझा चूना (CaO) का मिश्रण होता है। इसका उपयोग कवकनाशी के रूप में किया जाता है। फलदार पौधों को अपने जीवन काल की घटनाओं में कई प्रकार के रोगो से नुकसान का सामना करना होता है। जिनमें मुख्यतः कैंकर, डाउनी फफूंदी, पाउडरयुक्त फफूंदी और अन्य कवक के संक्रमण पाए जाते है। इन रोगो के परिणास्वरूप पौधों का कायिक विकास अवरुद्ध होने के साथ-साथ शाखाये सूखने लगती है और पौधे अच्छी पैदावार नहीं दे पाते है। इन रोगो के निदान के लिए बोर्डो मिश्रण का उपचार लाभदायक सिद्ध होता है। इसका आविष्कार सर्वप्रथम (1882) फ्रांस में बोर्डो विश्वविद्यालय, मिलार्डेट में किया था। जब कॉपर सल्फेट को चूने के घोल के साथ मिलाया गया तो पाया की यह मिश्रण रोग की घटनाओं को प्रभावी ढंग से रोक देता है। कॉपर सल्फेट और चूने के मिश्रण को "बौली बोर्डेलाइज़" (बोर्डो मिश्रण) नाम दिया गया था। अंगूर की बेलों पर फंगल संक्रमण को नियंत्रित करने के लिए इसके उपयोग के अलावा, मिश्रण का व्यापक रूप से आलू के झुलसा, आड़ू के पर्ण कुंचन और सेब में स्कैब को नियंत्रित करने के लिए भी उपयोग किया जाता है। बोर्डो मिश्रण तांबे के आयनों (Cu^{2+}) के माध्यम से अपना प्रभाव प्राप्त करता है। ये आयन कवक बीजाणुओं में एंजाइमों को इस तरह प्रभावित करता हैं कि अंकुरण को रोक सकें। इसका मतलब यह है कि फंगल रोग फैलने से पहले, बोर्डो मिश्रण का उपयोग निवारक रूप से किया जाना चाहिए।

बोर्डो मिश्रण क्या है?

बोर्डो मिश्रण फफुंदीनाशक के साथ साथ एक उत्कृष्ट जीवाणुनाशक भी है। यह मिश्रण, नीले थोथे (कॉपर सल्फेट) के घोल और बिना बुझे चुने के घोल को एक निश्चित अनुपात में मिलाकर तैयार किया जाता है। इस मिश्रण में सक्रिय तत्व तांबे की उपस्थिति विभिन्न कवक वर्गों (फफूंद) के विरूद्ध एक प्रभावशाली रसायन है।

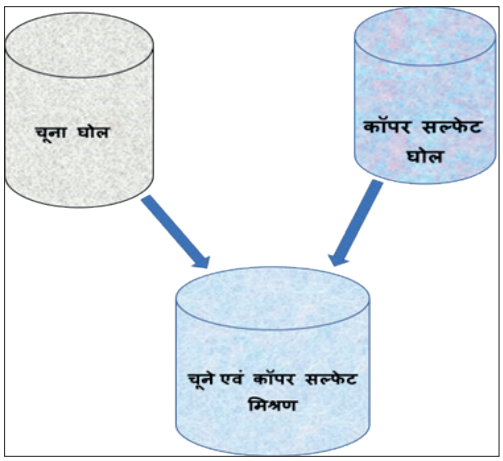

बोर्डो मिश्रण बनाने की विधि

बोर्डेक्स मिश्रण बनाने के लिए आवश्यक सामग्री: कॉपर सल्फेट, बिना बुझा चूना (कैल्शियम ऑक्साइड), मलमल कपड़े की छलनी या बारीक छलनी, मिट्टी / प्लास्टिक वर्तन एवं लकड़ी की छड़ी

1% बोर्डेक्स मिश्रण बनाने का बिधि (1:1:100)

- कॉपर सल्फेट - 1 किलोग्राम, बिना बुझा हुआ चूना - 1 किलोग्राम , पानी - 100 लीटर
- कॉपर सल्फेट क्रिस्टल को पीसकर बारीक़ पाउडर बना लें और मिटटी या प्लास्टिक के बर्तन/ बाल्टी में 50 लीटर पानी के साथ घोल लें।
- बिना बुझा हुआ चूना 1 किलोग्राम, 50 लीटर पानी में घोल तैयार करे
- चूने के घोल में कॉपर सल्फेट का घोल मिलाये और मिश्रण को लकड़ी की छड़ी / डंडे से धीरे-धीरे मिलाते रहें जब तक की चुना एवं कॉपर सल्फेट का घोल पूर्ण रूप से मिल जाय।

बोर्डेक्स मिश्रण को जाँच करने की विधि

उपरोक्त अनुपात में तैयार किया गया मिश्रण उदासीन या क्षारीय मिश्रण देता है। यदि उपर्युक्त सामग्री की गुणवत्ता एवं मिश्रण का अनुपात सही नहीं हो तो मिश्रण अम्लीय हो सकता है। इस स्थिति में किसानो को इस बात का पूर्ण ध्यान रखना होगा की बोर्डेक्स मिश्रण कभी भी अम्लीय नहीं हो। अम्लीय का मतलब की मिश्रण में कॉपर की मात्रा अधिक है यदि मिश्रण अम्लीय है, तो इसमें मुक्त तांबा होता है जो पौधे के लिए फाइटोटॉक्सिक होता है जिसके परिणामस्वरूप पौधे झुलस जाते हैं। इसलिए, मिश्रण को उपयोग में लाने से पहले उसमें मुक्त तांबे की उपस्थिति का परीक्षण करना अत्यंत आवश्यक है।

मिश्रण की तटस्थता का परीक्षण करने की विधियाँ

फील्ड परीक्षण: इस जाँच के लिए किसान लोहे की नई कील / चाकू को घोल में कुछ समय के लिए डुबोए। किसान को यह ध्यान देना होगा की अगर कॉपर अधिक होगा तो लोहे के कील / चाकू भूरे / लाल रंग का हो जाएगा। कॉपर अधिक होने की स्थिति में किसान को घोल में चूना और अधिक मिलाना चाहिए, जब तक की चाकू / कील से भूरा / लाल रंग हट नहीं जाता है।

पीएच पेपर परीक्षण: इस जाँच में बाजार में उपलब्ध पी.एच. पेपर की जरुरत पड़ती है। पी.एच. पेपर को मिश्रण में डुबोया जाता है, उसके उपरांत पी.एच. का पता लगाया जाता है।

रासायनिक परीक्षण: मिश्रण की कुछ बूँदें एक परखनली में डालें जिसमें 5 मिलीलीटर 10% पोटेशियम फेरोसायनाइड हो। यदि लाल अवक्षेप दिखाई देता है, तो यह मिश्रण की अम्लीय प्रकृति को इंगित

करता है। यदि तैयार मिश्रण अम्लीय श्रेणी में है, तो मिश्रण में कुछ और चूने का घोल मिलाकर इसे उदासीन या लगभग क्षारीय स्थिति में लाया जा सकता है।

बोर्डो मिश्रण के लाभ

- किसान स्वयं अपने घरो में बहुत ही आसानी से तैयार कर उपयोग में ला सकते हैं।
- यह एक कवकनाशी, जीवाणुनाशक और शैवालनाशक के रूप में कार्य करता है।
- टमाटर, आलू, मिर्च, अन्य सब्जियों, फलों (संतरा, नींबू), बीटल बेल, अदरक, फूल और सजावटी पौधों की बीमारियों जैसे कि फुट रोट, स्टेम रोट, लीफ स्पॉट, लीफ ब्लाइट, एन्थ्रेक्नोज, कैंकर, डैम्पिंग ऑफ, काला धब्बा, पछेती एवं अगेती झुलसा आदि में उपयोग लाभदायक होता है।
- इसे बनाने में लगने बाली आवश्यक रसायन सामग्री कॉपर सल्फेट और चूना है जो बाजार में आसानी से उपलब्ध है।
- तांबा आधारित कवकनाशी द्वारा नियंत्रित होने वाले सभी रोग जैसे पत्ती धब्बा, झुलसा रोग आदि को इससे नियंत्रित किया जा सकता है।

किसानो के लिए ध्यान रखने योग्य बातें

- किसानो को बोर्डेक्स मिश्रण का घोल तैयार करने के तुरंत बाद ही इसका उपयोग खेत या बगीचे में कर लेना चाहिए।
- इसे लंबे समय तक (तैयारी के 2 दिन से अधिक) तक नहीं रखा जा सकता है।
- कॉपर सलफेट का घोल तैयार करते समय किसानो को लोहें / गैल्वेनाइज्ड बर्तन को उपयोग में नहीं लाना चाहिए।
- किसानो को यह ध्यान रखना हो की वे बोर्डेक्स मिश्रण को किसी अन्य रसायन या पेस्टिसाइड के साथ में इसका इस्तेमाल नहीं करना चाहिए।
- चूने के घोल में हमेशा कॉपर सल्फेट का घोल मिलाना चाहिए, इसके विपरीत मिलाने से कॉपर का अवक्षेपण होता है और परिणामस्वरूप निलंबन कम से कम विषाक्त होता है।
- नोजल को जाम होने से बचाने के लिए सलाह दी जाती है किसी स्प्रे टंकी में डालने से पहले बोर्डो मिश्रण को पतली कपड़े या छलनी से छान लें।
- बचे हुए बोर्डो मिश्रण को खेत में नहीं फेंकना चाहिए जिससे की आगामी बुआई के लिए विषैला साबित हो।
- अत्यधिक गर्म दिनों में, जब पौधे अस्थायी रूप से मुरझाने के लक्षण दिखा रहे हों या जब बारिश हो रही हो, तो बोर्डो मिश्रण का छिड़काव नहीं किया जाना चाहिए, विशेष रूप से नई उभरी कोमल पत्तियों पर।
- इसे ठंड और बादल वाले मौसम में उपयोग में नहीं लाया जा सकता, क्योंकि यह पौधों में फाइटोटॉक्सिसिटी का कारण बनता है।

7. लीची में पोषकतत्व प्रबंधन

रामाशीष कुमार, प्रभात कुमार, सोमेश कुमार एवं लोकेश कुमार
भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर, बिहार

लीची (*लीची चाइनेन्सिस*) उत्कृष्ट गुणवत्ता का एक स्वादिष्ट रसदार फल है। लीची पौधे को संतोषजनक वृद्धि और फलने के लिए पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। लीची में फल की उपज एवं गुणवत्ता पत्ती एवं मिट्टी के पोषक तत्वों की अनुकूलतम सीमा पर निर्भर होती है। कम उर्वरता वाली मिट्टी में पेड़ों को उर्वरक प्रयोग पर प्रतिक्रिया देने में काफी समय लगता है। जब लीची के पौधे में किसी पोषक तत्व की सांद्रता असामान्य रूप से कम या उच्च स्तर तक पहुँच जाती है, तब लक्षण पत्तियों में दिखाई देते हैं। आम तौर पर पौधे का विकास और फल की गुणवता एवं उपज में कमी आ जाती है। लक्षण प्रकट होने से पहले पत्ती में पोषक तत्वों की सघनता निम्न मानक स्तर से नीचे गिर जाती है, तो पेड़ कई पोषक तत्व ले चुका होता है। इसलिए पौधे में पोषक तत्वों की उचित सांद्रता बनाये रखने हेतु पौधे में निरंतर पोषक तत्वों को सही समय पर उचित तौर तरीको से प्रबंधन को समझना जरुरी है।

पोषक तत्व क्या है?

पोषक तत्व वह रसायन होता है, जिसकी आवश्यकता किसी जीव को उसके जीवन और वृद्धि के साथ-साथ उसके शरीर की उपापचय की क्रिया संचालन के लिए आवश्यक होता है और जिसे वह अपने वातावरण से ग्रहण करता है। वनस्पति जीवो (पौधे) जड़ द्वारा भूमि से पानी एवं पोषक तत्व, वायु से कार्बन डाई आक्साइड तथा सूर्य से प्रकाश ऊर्जा लेकर अपने विभिन्न भागों का निर्माण करता है। पौधों के सामान्य विकास एवं वृद्धि हेतु कुल 17 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। इनमें से किसी एक पोषक तत्व की कमी होने पर वृद्धि, विकास एवं पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। पौधों की आवश्यकतानुसार पोषक तत्वों को तीन श्रेणियों में वगीकृत किया जा सकता है। मुख्य पोषक तत्व (जिन पोषक तत्वों की काफी मात्रा में आवश्यकता होती है) जैसे नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश, कैल्सियम, मैग्नीशियम एवं गन्धक। सूक्ष्म पोषक तत्व (पोधों को इन तत्वों की कम मात्रा में आवश्यकता पड़ती है) जैसे लोहा, जिंक, कॉपर, मैग्नीज, मोलिब्डेनम, बोरान एवं क्लोरीन

तालिका: 1. पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्व एवं उनके कार्य

पोषक तत्व	कार्य
नाइट्रोजन (N)	सभी जीवित ऊतकों यानि जड़, तना, पत्ति की वृद्धि और विकास में सहायक है। क्लोरोफिल, प्रोटोप्लाज्मा प्रोटीन और न्यूक्लिक अम्लों का एक महत्वपूर्ण अवयव है।
फास्फोरस (P)	पौधों के वर्धनशील अग्रभाग, बीज और फलों के विकास हेतु आवश्यक है। पुष्प विकास में सहायक है। कोशिका विभाजन के लिए आवश्यक है। जड़ों के विकास में सहायक होता है। न्यूक्लिक एवं अमीनों अम्लों, प्रोटीन, फास्फोलिपिड और सहविकारों का अवयव है।
पोटेशियम (K)	एंजाइमों की क्रियाशीलता बढाता है। ठण्डे और बादलयुक्त मौसम में पौधों द्वारा प्रकाश के उपयोग में वृद्धि करता है, जिससे पौधों में ठण्डक और अन्य प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता बढ़ जाती है। कार्बोहाइड्रेट के स्थानांतरण, प्रोटीन संश्लेषण और इनकी स्थिरता बनाये रखने में मदद करता है। पौधों की रोग प्रतिरोधी क्षमता में वृद्धि होती है। इसके उपयोग से दाने आकार में बड़े हो जाते है और फलों और सब्जियों की गुणवत्ता में वृद्धि होती है।
कैल्शियम (Ca)	कोशिका भित्ति का एक प्रमुख अवयव है, जो कि सामान्य कोशिका विभाजन के लिए आवश्यक होता है। कोशिका झिल्ली की स्थिरता बनाये रखने में सहायक होता है। एंजाइमों की क्रियाशीलता में वृद्धि करता है। पौधों में जैविक अम्लों को उदासीन बनाकर उनके विषाक्त प्रभाव को समाप्त करता है। कार्बोहाईड्रेट के स्थानांतरण में मदद करता है।
मैग़नीशियम (Mg)	क्लोरोफिल का प्रमुख तत्व है, जिसके बिना प्रकाश-संश्लेषण (भोजन निर्माण) संभव नहीं है। कार्बोहाईड्रेट - उपापचय, न्यूक्लिक अम्लों के संश्लेषण आदि में भाग लेने वाले अनेक एंजाइमों की क्रियाशीलता में वृद्धि करता है। फास्फोरस के अवशोषण और स्थानांतरण में वृद्धि करता है।
गंधक (S)	प्रोटीन संरचना को स्थिर रखने में सहायता करता है। तेल संश्लेषण और क्लोरोफिल निर्माण में मदद करता है। विटामिन के उपापचय क्रिया में योगदान करता है।
जस्ता (Zn)	पौधों द्वारा फास्फोरस और नाइट्रोजन के उपयोग में सहायक होता है। न्यूक्लिक अम्ल और प्रोटीन-संश्लेषण में मदद करता है। हार्मोनों के जैव-संश्लेषण में योगदान करता है। अनेक प्रकार के खनिज एंजाइमों का आवश्यक अंग है।
तांबा (Cu)	पौधों में विटामिन 'ए' के निर्माण में वृद्धि करता है। अनेक एंजाइमों का घटक है।
लोहा (Fe)	पौधों में क्लोरोफिल के संश्लेषण और रख-रखाव के लिए आवश्यक होता है। न्यूक्लिक अम्ल के उपापचय में एक आवश्यक भूमिका निभाता है। अनेक एंजाइमों का आवश्यक अवयव है।

पोषक तत्व	कार्य
मैगनीज (Mn)	प्रकाश और अन्धेरे की अवस्था में पादप कोशिकाओं में होने वाली क्रियाओं को नियंत्रित करता है। नाइट्रोजन के उपापचय और क्लोरोफिल के संश्लेषण में भाग लेने वाले एंजाइमों की क्रियाशीलता बढ़ा देता है। पौधों में होने वाली अनेक महत्वपूर्ण एंजाइम-युक्त और कोशिकीय प्रतिक्रियाओं के संचालन में सहायक है। कार्बोहाईड्रेट के आक्सीकरण के फलस्वरूप कार्बन-डाइआक्साइड और जल का निर्माण करता है।
बोरोन (B)	प्रोटीन-संश्लेषण के लिये आवश्यक है। कोशिका विभाजन को प्रभावित करता है।
मोलिब्डेनम (Mo)	जड़ गुत्थी जीवाणुओं द्वारा वायुमंडलीय नाइट्रोजन के निर्धारण में मदद करता है। पौधों में नाइट्रोजन के रासायनिक परिवर्तन के लिए मोलिब्डेनम की जरूरत होती है, जिससे जमीन में नाइट्रोजन की कमी को कुछ हद तक पूरा किया जा सकता है।
क्लोरीन (Cl)	पौधों का एक आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्व है और कई शारीरिक चया-पचय प्रक्रियाओं में भाग लेता है। पौधों की वृद्धि और विकास में इसके कार्यों में आसमाटिक और रंध्र विनियमन, प्रकाश संश्लेषण में ऑक्सीजन का विकास और रोग प्रतिरोध और सहनशीलता शामिल हैं।

पौधों में उर्वरक का प्रयोग कब करे?

फलदार पौधों के जड़ क्षेत्र के निकट खाद और उर्वरकों की उचित मात्रा एवं नियमित प्रयोग से पूर्ण एवं नियमित फलन और फल की गुणवत्ता उच्च होती है। लीची में खाद एवं उर्वरक देने का सबसे उचित समय, फलों की तुड़ाई के बाद का होता है, क्योंकि उस समय पेड़ वानस्पतिक वृद्धि की अवस्था में होते है। सितंबर महीने के प्रथम सप्ताह के बाद खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग नहीं करना चाहिए और ऐसा करने पर पौधे के फलो के उत्पादन में नुकसान होता है क्योकि पेड़ प्रजननकारी अवस्था से निकल कर वानस्पतिक वृद्धि की अवस्था में चले जाते है। जिसमें नई पत्तियां एवं टहनियां बनती है, ऐसे पेड़ों में मंजर भी नहीं आता है।

खाद एवं उर्वरको के प्रयोग करने की विधि

अच्छे उत्पादन के लिए अधिक उर्वरकों की आवश्यकता नहीं बल्कि उनकी सही मात्रा, सही जगह और उचित समय पर प्रयोग फलों के उत्पादन के लिए लाभकारी होता है। इस प्रकार कम खर्च में पौधे के उत्पादन को गुणवत्तापूर्ण बढ़ाया जा सकता है एवं मृदा उर्वरता को बनाये रखा जा सकता है। उर्वरक की मात्रा मिट्टी में उपस्थित पोषक तत्वों की जांच के आधार पर निर्धारित करनी चाहिए।

रिंग विधि: उर्वरकों को पेड़ के चारों ओर फैलाव की त्रिज्या तक समान रूप से लगभग 25 सेमी चौड़ी, 20 - 25 सेमी की गहराई तक मिट्टी को खुदाई कर रिंग बनाकर खाद एवं उर्वरको को एक समान रूप से डालकर और मिट्टी को अच्छी तरह गुड़ाई करके ऊपर के मिट्टी से ढक देना चाहिए। इस प्रक्रिया से पौधों में नई शोषक जड़ों (फीडर रूट्स) का अधिक विकास होता है और खाद एवं उर्वरक का पूर्ण उपयोग होता है। खाद देने के पश्चात यदि वर्षा नहीं होती है तो सिंचाई करना आवश्यक है।

पौधों में उर्वरकों की मात्रा एवं डालने का समय सीमा: कुशल उपयोग के लिए, उर्वरकों को जड़ क्षेत्र पर समान रूप से वितरित किया जाना चाहिए। लीची के युवा पौधों में, सक्रिय जड़ें तने से 30 सेमी दूर एक गोलाकार तरीके में बिखरी होती हैं और अच्छी तरह से विकसित पेड़ों में यह मुख्य तने से लगभग 1.5-2.0 मीटर की दूरी तक फैल सकती हैं। शुरुआत के 2 से 3 वर्षों तक के लीची पौधों में उर्वरकों के उपयोग प्रति वर्ष 20 किलोग्राम सड़ी हुई गोबर की खाद, 2 किलोग्राम करंज की खली, 200 ग्राम यूरिया, 250 ग्राम सिंगल सुपर फॉस्फेट और 150 ग्राम पोटाश प्रत्येक पौधे में प्रति पौधा प्रति वर्ष की दर से देना चाहिए। लीची के पौधों में फल तुड़ाई के बाद नए कल्ले आते हैं जिनपर अगले वर्ष फलन आती है। अत: अधिक औजपूर्ण एवं स्वस्थ कल्लों के विकास के लिये नत्रजन, फ़ॉस्फोरस एवं पोटाश खाद की सम्पूर्ण डोज़ की दो तिहाई मात्रा फल की तुड़ाई एवं वृक्ष के टहनियों को कटाई-छटाई के तुरन्त बाद जून-जुलाई में देना चाहिये। लीची के फलों के तुड़ाई के तुरन्त बाद खाद दे देने से पौधों में कल्लों का विकास अच्छा एवं स्वस्थ होता है और उन कल्लों में फलन भी अच्छा होता है। नत्रजन की शेष एक तिहाई मात्रा फल विकास के समय जब फल लौंग के आकार का हो जाएं तो सिंचाई के साथ देना चाहिए। जिन बगीचों में जिंक की कमी के लक्षण दिखाई दे उनमें 150-200 ग्राम जिंक सल्फेट प्रति वृक्ष की दर से अगस्त माह के अंतिम सप्ताह में अन्य उर्वरकों के साथ देना लाभकारी होता है।

8. भारत की पारम्परिक खाद्य प्रणाली

अंकित कुमार, इप्सिता सामल, भाग्या विजयन, चमन कुमार एवं उपज्ञा साह

भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर, बिहार

भारत में पारंपरिक भोजन की आदतें और आहार तैयारी आयुर्वेद से आती है, जो वेदों की शाखाओं में से एक है। इसे अथर्व वैदिक उपवेद माना जाता है। ऐसा माना जाता है कि इसकी उत्पत्ति सृष्टि से पहले स्वयं रचयिता (ब्राह्मण) से हुई थी क्योंकि यह ज्ञान की एक धारा है जो वैदिक साहित्य के समानांतर पीढ़ी-दर-पीढ़ी अनंत काल से चली आ रही है। चूंकि यह कब अनुपस्थित था, यह कोई नहीं बता सकता, इसलिए इसे शाश्वत माना जाता है। आयुर्वेद के अनुसार भोजन का शरीर और दिमाग दोनों पर प्रभाव पड़ता है। यदि हम जानते हैं कि ऐसे खाद्य पदार्थ कैसे बनाएं जो हमारे शरीर और मस्तिष्क के लिए फायदेमंद हों तो हम आहार को एक चिकित्सीय उपकरण के रूप में उपयोग कर सकते हैं। भोजन स्वस्थ अस्तित्व का सबसे महत्वपूर्ण घटक है और जब इसका अनुचित तरीके से सेवन किया जाता है, तो यह कई बीमारियों का कारण बन सकता है। आयुर्वेद के अनुसार, आहार वस्तुएं पांच महाभूतों से बनी होती हैं, और प्रत्येक भूताग्नि पाचन और चयापचय के दौरान अपने स्वयं के घटकों को तोड़ देती है - लेकिन केवल तब जब अंतराग्नि उन्हें उत्तेजित करती है। भारत में, भोजन तैयार करने, संरक्षण के तरीकों और औषधीय लाभों के संबंध में पारंपरिक ज्ञान कई शताब्दियों से मौजूद है। प्राकृतिक स्रोतों की विविधता, ऋतुओं और स्थानों के संबंध में उनकी विशेषताएं, और शारीरिक और रोगविज्ञान दोनों स्थितियों में उनके अद्वितीय कार्य, शास्त्रीय आयुर्वेदिक पुस्तकों में शामिल कुछ विषय हैं। क्योंकि आंतरिक आग की स्थिति उसके ईंधन पर निर्भर करती है, विशेषज्ञों का कहना है कि मनभावन सुगंध, स्वाद और स्पर्श वाले खाद्य पदार्थ और पेय पदार्थ जो अनुशंसित तकनीक के अनुसार उपभोग किए गए हैं, उनके परिणामों के प्रत्यक्ष अवलोकन के आधार पर प्रमुख ताकत हैं। अगर सही ढंग से लिया जाए, तो वे मानसिक शक्ति, धातु संरचना, ताकत, रंग और इंद्रिय स्पष्टता प्रदान करते हैं; यदि नहीं, तो वे हानिकारक हो जाते हैं।

आयुर्वेद में पोषण की मूल अवधारणा

उपनिषद के अनुसार हम जो भोजन करते हैं उसे तीन श्रेणियों में बांटा गया है। सूक्ष्म भाग मन को पोषण देता है, जबकि अशिष्ट भाग मांस में परिवर्तित हो जाता है। वहीं, यह भी बताया गया है कि हम जो पानी पीते हैं उसे तीन भागों में बांटा गया है। सूक्ष्म भाग हमारी जीवन शक्ति या प्राण को पोषण देता है, जबकि अधिकांश भाग पेशाब में और मध्यम भाग रक्त में बदल जाता है।वैदिक साहित्य में अनेक अन्नकल्पनाओं का बार-बार उल्लेख मिलता है। यव, एक प्रकार का अनाज है, जिसका उल्लेख ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में मिलता है। वैदिक काल के दौरान उपयोग किए जाने वाले अहार द्रव्य के कुछ नामों में धन (तले हुए यव धान्य), करंभ (मंथे हुए खाद्य पदार्थ), सक्तु (भुना हुआ आटा), परिवापा (भुना हुआ अनाज), पायस (दूध), दधि (दही), सोम शामिल हैं। (द्रव्य विशेष), अमिक्षा (दूध + दही), योनि (अमिक्षा बनाते समय तरल भाग), और मधु (शहद)। ऐसे कई उदाहरण हैं जिनमें वैदिक साहित्य में मद्य कल्पना (किण्वित तैयारी), पायस, दधि, नवनीता, सर्पी, परिवापा, लाजा, सक्तु, करंभ, ओदन आदि का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

संहिताओं के अनुसार भोजन के तरीके

सुश्रुताचार्य के अनुसार व्यक्ति को उचित समय पर उचित मात्रा में भोजन ऊंचे स्थान पर बैठकर करना चाहिए। भोजन के बाद हमें राजा की तरह आराम से बैठना चाहिए और फिर थोड़ी देर टहलना चाहिए। भोजन करते समय सबसे पहले हमें मीठा स्वाद लेना चाहिए, फिर नमक और खट्टा स्वाद लेना चाहिए और फिर तीखा, कड़वा और कसैला स्वाद लेना चाहिए। मीठा स्वाद भूखे व्यक्ति के पेट में वायु पर काबू पाने में मदद करता है; नमक और खट्टा स्वाद पाचन अग्नि को उत्तेजित करते हैं; और अंत में लिया गया तीखा, कड़वा और कसैला स्वाद कफ दोष को वश में कर देता है। साथ ही शुरुआत में लिए गए कुछ फल वात दोष को दूर करने में मदद करते हैं। भोजन के आरंभ, मध्य और अंत में आंवले का सेवन करने की सलाह दी जाती है। तृप्ति के एक तिहाई तक भारी भोजन लेना चाहिए और तृप्ति तक हल्का भोजन लिया जा सकता है।

चरक संहिता सूत्रस्थान 27वां अध्याय (अन्नपान विधि अध्याय) विभिन्न प्रकार के अनाज और दालों, फलों और सब्जियों, दूध और डेयरी उत्पादों, गन्ने की तैयारी, शहद के विभिन्न प्रकार, गुण और लाभ; और इसके प्रकार, पानी, वाइनवगैरह के बारे में बताता है। वाग्भटाचार्य के अनुसार ज़मीन पर बैठकर खाने से पचन प्रक्रिया सही रहती है। उन्होंने कहा कि इससे पाचन तंत्र की अग्नि तीव्र हो जाती है। साथ ही खाने की थाली को जमीन से थोड़ा ऊंचा रखना चाहिए। दोपहर के समय हल्का भोजन, जूस या छाछ ले सकते हैं। हमें शाम को भोजन तब करना चाहिए जब सूर्य चमक रहा हो। चूंकि सूर्यास्त के बाद पाचन अग्नि निष्क्रिय होती है, इसलिए आचार्य सलाह देते हैं कि हम अपना रात का खाना सूरज डूबने से पहले खा लें। खाने के बाद हमें बायीं करवट आराम से लेटना चाहिए। जब व्यक्ति बायीं ओर करवट लेकर लेटता है तो शरीर के दाहिनी ओर स्थित पिंगला (सूर्य) नाड़ी सक्रिय हो जाती है। इसके बाद पिंगला नाड़ी के सक्रिय होने से पाचन अग्नि जागृत होती है। वह हमें अंधेरे के बाद अपने आहार को तरल पदार्थों तक सीमित रखने की सलाह देते हैं।

सात्विक आहार, राजसिक आहार तथा तामसिक आहार की अवधारणा

शुद्ध सार को सात्विक कहा जाता है। स्वस्थ और आध्यात्मिक रूप से जागरूक जीवन के लिए यह सबसे शुद्ध आहार है। यह शरीर को स्वस्थ और संतुलित अवस्था में रखता है। आयुर्वेद के अनुसार यह दीर्घायु, मानसिक स्पष्टता, शारीरिक शक्ति और उत्कृष्ट स्वास्थ्य के लिए आदर्श आहार है। इसके अतिरिक्त, यह दिमाग को शांत और शुद्ध करता है, जिससे वह अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन कर पाता है। इस प्रकार, सात्विक आहार सच्चे

स्वास्थ्य को बढ़ावा देता है, जो एक शांत दिमाग की विशेषता है जो एक फिट शरीर और दोनों के बीच एक संतुलित ऊर्जा प्रवाह का प्रभारी है। जो लोग शांत, शांत और चिंतनशील जीवन जीना चाहते हैं, उनके लिए सात्विक आहार बहुत अच्छा है।सात्विक खाद्य पदार्थों में अंकुरित साबुत अनाज, ताजे फल, ज़मीन और समुद्री सब्जियां, शुद्ध फलों का रस, अखरोट और बीज का दूध और पनीर, फलियां, मेवे, बीज, अंकुरित बीज, शहद और हर्बल चाय शामिल हैं। सात्विक भोजन वे खाद्य पदार्थ हैं जो आपके पेट को बिल्कुल भी परेशान नहीं करते हैं।

आयुर्वेद राजसिक खाद्य पदार्थों को ऐसे खाद्य पदार्थों के रूप में परिभाषित करता है जो बेचैनी और क्रोध पैदा करते हैं और पित्त और वात दोष को परेशान करते हैं। वे जुनून, आक्रामकता, रचनात्मकता, आग और बाहरी कार्रवाई को बढ़ाते हैं। इसमें अत्यधिक मात्रा में खट्टा, नमकीन और मसालेदार भोजन होता है। ऐसा कहा जाता है कि राजसिक भोजन में अचार, चाय, कॉफी, शराब, खट्टे और मसालेदार व्यंजन और लहसुन और प्याज जैसी सब्जियां शामिल हैं। राजसिक भोजन से मन अशांत और अनियंत्रित हो जाता है, जिससे मन-शरीर का संतुलन बिगड़ जाता है। तामसिक खाद्य पदार्थ वे हैं जो आंतरिक अंधकार और भटकाव को बढ़ाते हैं। तला हुआ और जमे हुए भोजन, त्वरित भोजन, माइक्रोवेव भोजन, प्रसंस्कृत भोजन, रात भर का भोजन, मांस, मछली, अंडे, प्याज, शराब, आदि तामसिक भोजन के उदाहरण हैं। वे जड़ता को बढ़ाने, हमें धीमा करने, हमें सुन्न करने और हमें उदास करने के लिए अच्छा काम करते हैं। सभी भोजनों में सबसे ख़राब भोजन तामसिक भोजन है।

त्रिदोष नाशक भोजन

आयुर्वेद के मुताबिक, शरीर में तीन दोष होते हैं जिन्हें त्रिदोष कहते हैं: वात, पित्त एवं कफ़, ये तीनों दोष शरीर के कामकाज और व्यवहार को प्रभावित करते हैं. जब ये तीनों दोष संतुलित रहते हैं, तो शरीर स्वस्थ रहता है. अगर इनमें से कोई भी दोष असंतुलित हो जाए, तो शरीर में बीमारियां हो सकती हैं। शरीर की गतिविधियां, उन्मूलन प्रक्रिया, तंत्रिका तंत्र विनियमन और अन्य प्रक्रियाएं सभी वात दोष से प्रभावित होती हैं। वात प्रकृति वाले लोगों के लक्षण शुष्क, हल्के, ठंडे, तेज, अनियमित और खुरदरे होते हैं। अपने गुणों के विपरीत, उन्हें चिकने, वजनदार और गर्म गुणों की आवश्यकता होती है। मिठास, खटास और नमक के स्वाद वाला ताजा, गर्म भोजन वात लोगों के लिए आदर्श है। अपने पाचन को नियंत्रित करने के लिए उन्हें अत्यधिक उपवास और मसालेदार भोजन के सेवन से बचना चाहिए। गर्म पेय पदार्थ, मीठे फल, कच्चे बादाम, दूध, मक्खन, क्रीम, गर्म अनाज आदि सभी आहार का हिस्सा हैं जो वात सह के लिए उपयुक्त हैं। पित्त लोग गर्म, तीक्ष्ण, या मर्मज्ञ होते हैं, जिसमें बहता हुआ तरल पदार्थ होता है जो हल्का और थोड़ा चिकना होता है। इन लोगों को इन गुणों के विपरीत - शीतल, सौम्य और शुष्क और भारी गुणों को संरक्षित करना चाहिए। बरसात के मौसम में पित्त बढ़ जाता है और अक्टूबर में यह और भी बदतर हो जाता है। मुख्य रूप से मीठे, कड़वे और कसैले खाद्य पदार्थों के साथ संतुलित और मजबूत आहार से इस संविधान को बहुत फायदा होगा। विशेष रूप से गर्म मौसम में, ठंडे खाद्य पदार्थों और पेय पदार्थों की सराहना की जाती है, जैसे कि मुख्य रूप से शाकाहारी भोजन जो शरीर के लिए अच्छा है। कच्चे भोजन और पेय पदार्थों के पर्याप्त सेवन की सलाह दी जाती है। कॉफी, शराब, डार्क टी, अचार, सिरका, मिर्च, वनस्पति तेल, पके हुए सामान, डिब्बाबंद या तत्काल खाद्य पदार्थ, हाइब्रिड अनाज आदि से बचना चाहिए। इसकी जगह ठंडे पानी का सेवन करना चाहिए। शरीर का कफ दोष शरीर की संरचना को नियंत्रित करता है, प्रतिरक्षा प्रदान करता है, कोशिकाओं को एक साथ रखता है, मांसपेशियों और हड्डियों का निर्माण करता है, और अन्य चीजों के अलावा सुरक्षा प्रदान करता है। कफ से पीड़ित लोगों के लक्षण नरम, भारी, ठंडे और चिपचिपे होते हैं। उन्हें ऐसे खाद्य पदार्थों और पेय पदार्थों की आवश्यकता होती है जो उनके अस्तित्व के विपरीत हों। इसलिए, उन्हें ऐसे खाद्य पदार्थों की आवश्यकता होती है जो कठोर, गर्म, हल्के और कड़वे, तीखे और कसैले स्वाद वाले हों। उन्हें शुगर-फ्री, कम कार्ब, कम वसा वाले आहार को प्राथमिकता देनी चाहिए। कफ प्रकृति वाले लोगों को ठंडे पानी, जमे हुए भोजन और बार-बार खाने से दूर रहना चाहिए।

फलों पर आयुर्वेदिक दृष्टिकोण

आयुर्वेद के अनुसार, जब फलों को उचित मौसम और जलवायु में पकाया और खाया जाता है, तो वे शुद्ध अमृत होते हैं। वे तुरंत रस (पोषक द्रव) में बदल जाते हैं - शरीर के सात ऊतकों में से पहला। ताजे, पके फल को व्यावहारिक रूप से पचाने की आवश्यकता नहीं होती है और यह ओजस को बढ़ाने में मदद करता है, जो पाचन का सबसे अच्छा उप-उत्पाद है जो प्रतिरक्षा, खुशी और ताकत को बढ़ाता है। मीठे, पके, सुपर फल शरीर को बहुमूल्य पोषक तत्व प्रदान करते हैं। दैनिक आधार पर ताजे, जैविक फल खाने से आप अधिक ऊर्जा और खुशी महसूस करेंगे। आयुर्वेद में, सुपर फलों को शरीर से विषाक्त पदार्थों को साफ करने की उनकी क्षमता के लिए भी महत्व दिया जाता है।फलों को सुबह के समय या अन्य खाद्य पदार्थों से अलग नाश्ते के रूप में खाना सबसे अच्छा है। भोजन या अन्य खाद्य समूहों, विशेष रूप से डेयरी उत्पादों के साथ फल खाने से खट्टा प्रभाव पैदा हो सकता है जिससे असुविधा, अपच और गैस हो सकती है।यदि आप भोजन के साथ फल खाने जा रहे हैं, तो सुनिश्चित करें कि आपके पाचन पर उनके प्रभाव को कम करने के लिए उन्हें या तो पकाया जाए या अन्य व्यंजनों से पहले खाया जाए।आयुर्वेदिक व्यंजनों में फलों के संयोजन का आनंद चटनी, कॉम्पोट्स और प्रिजर्व के रूप में लिया जा सकता है। पके हुए फल कई प्रकार के मसालों जैसे दालचीनी, सौंफ, सूखा भुना जीरा, अदरक और धनिया के साथ अच्छी तरह से मिल जाते हैं।

निष्कर्ष

आयुर्वेद, चिकित्सा की एक पारंपरिक प्रणाली जो तीन सहस्राब्दी पहले दक्षिण एशियाई क्षेत्र में उत्पन्न हुई थी, कुछ विशिष्ट वैचारिक और सैद्धांतिक स्थितियों के आधार पर भोजन और स्वास्थ्य के बारे में व्यापक अंतर्दृष्टि प्रदान करती है। पारंपरिक चिकित्सा में वैश्विक रुचि बढ़ी है। पारंपरिक हर्बल चिकित्सा की निगरानी और विनियमन के प्रयास चल रहे हैं। जीवन में भोजन एक अनिवार्य आवश्यकता है और उचित, प्राकृतिक आहार का पालन करके कोई भी अच्छा स्वास्थ्य प्राप्त कर सकता है। अधिकांश स्वास्थ्य समस्याएं गलत खान-पान और खाना पकाने के तरीकों के कारण विकसित होती हैं। तीन उपस्तंभों (जीवन का समर्थन) में से, अर्थात् आहार (आहार), निद्रा (नींद) और ब्रह्मचर्य (ब्रह्मचर्य का पालन); आयुर्वेद में प्रथम को अधिक महत्व दिया गया है और सर्वोत्तम माना गया है।

9. लीची में नवाचार के दूरगामी परिणाम

भाग्या विजयन[1], इप्सिता सामल[1], अंकित कुमार[1], आशीष कुमार[2] एवं बिकास दास[1]

[1]भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र, मुजफ्फरपुर, बिहार, [2]क्षेत्रीय बीज विश्लेषण प्रयोगशाला, मुशहरी, मुजफ्फरपुर, बिहार

लीची एक रसदार मीठा फल है जो लम्बे समय से अपने अद्वितीय स्वाद के लिए विख्यात है। हालाँकि, यह बहुमुखी फल एक स्वादिश्ट नाश्ते की तुलना में कही अधिक पोषण प्रदान करता है। हाल के नवाचारों में खाद्य और पेय पदार्थ से लेकर सौंदर्य प्रसाधन और फार्मास्यूटिक्लस तक विभिन्न उद्योगों में लीची की क्षमता उजागर हुई है। लीची पोषक तत्वों से भरपूर फल है जिसमे विभिन्न प्रकार के विटामिन और खनिज पाये जाते है।

तालिका: 1. लीची के फलों का पोषण मूल्य

पोषक तत्व	मात्रा (प्रति 100 ग्राम खाने वाले भाग के आधार पर)
उर्जा	66 किलो कलोरी
कार्बोहाइड्रेट	16.5 ग्राम
प्रोटीन	0.8 ग्राम
वसा	0.4 ग्राम
रेशे	1.3 ग्राम
विटामिन सी	71.5 मिग्रा

चीन में एक पारंपरिक दवा के रुप में, लीची का उपयोग सदियों से पेट के अल्सर, मधुमेह, खांसी, दस्त और अपच के इलाज के साथ-साथ आंतों के कीड़ों को मारने के लिए किया जाता रहा है। *इन-विट्रो* और *इन-विवो* दोनों अध्ययनों से संकेत मिला है कि साबूत लीची फल एंटीऑक्सीडेंट, हाइपोग्लाइसेमिक, हेपेटोप्रोटेक्टिव, आइपोलिपिडेमिक और मोटापा-रोधी गतिविधियों को प्रदर्षित करते हैं और कैंसर विरोधी, एंटीथेरोस्क्लेरोटिक, आइपोटेंसिव, न्यूरोप्रोटेक्टिव और इम्यूनोमॉडयूलेटरी गतिविधियों को दर्शाते हैं। लीची के स्वास्थ्य लाभों का श्रेय इसके पोषण घटकों की विस्तृत श्रृंखला को दिया जाता है, जिनमें से पॉलीसेकेराइड और पॉलीफेनोल्स में विभिन्न लाभकारी गुण साबित हुए हैं। लीची पॉलीसेकेराइड और पॉलीफेनोल्स की विविधता और संरचना उनकी जैविक गतिविधियों पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है। इसके अलावा, ताजी लीची और इसके उत्पादों का सेवन करने से कुछ प्रतिकूल प्रतिक्रियाएं हो सकती हैं जैसे कि खुजली, पित्ती, होठों की सूजन, गले में सूजन, सांस की तकलीफ या दस्त। ये समस्याएं संभवतः लीची में घुलनशील प्रोटीन के कारण होती हैं जो एनाफिलेक्टिक और सूजन संबंधी प्रतिक्रियाओं का कारण बन सकती हैं।

रसोई संबंधी नवाचार: एक स्वादिष्ट मिश्रण

- **उन्नत व्यंजन:** आज के समय में बावर्ची तेजी से लीची को अपनी रसोई में शामिल कर रहे हैं, जिससे मीठे और नमकीन दोनों तरह के व्यंजनों में एक अनोखा मोड़ आ रहा है। लीची की सूक्ष्म मिठास और ताज़ा कॉकटेल तक, स्वादों की एक विस्तृत श्रृंखला की पूरक है।
- **लीची युक्त विनैग्रेट:** लीची विनैग्रेट सलाद, ग्रिल्ड सब्जियों और समुद्री भोजन में और अधिक मिठास और अम्लता जोड़ता है।
- **लीची करी:** फल की प्राकृतिक मिठास मसालेदार करी की गर्मी को संतुलित करती है, जिससे एक सामंजस्यपूर्ण स्वाद की रुपरेखा बनती है।
- **लीची से बनी मिठाइयाँ:** शानदार पेस्ट्री से लेकर ताज़ा शर्बत और आइसक्रीम तक, लीची विभिन्न प्रकार की मिठाइयों को एक अनूठा स्वाद और बनावट प्रदान करती है।
- **लीची कॉकटेल:** फलों के रस का उपयोग ताज़ा और अद्वितीय कॉकटेल बनाने के लिए या तो आधार के रुप में या स्वाद बढ़ाने के लिए किया जाता है।
- **मूल्य वर्धित उत्पाद:** प्रसंस्कृत लीची उत्पाद, जैसे लीची जूस, लीची वाईन, लीची जैम और लीची सूखे फल, अपनी सुविधा और लंबी शेल्फ लाइफ के कारण लोकप्रियता हासिल कर रहे हैं। ये उत्पाद पूरे वर्ष लीची के स्वाद का आनंद लेने का एक सुविधाजनक तरीका प्रदान करते है।

स्वास्थ: एक पोषण शक्तिगृह

- **कार्यात्मक खाद्य और पेय पदार्थ:** लीची में भरपूर मात्रा मं पाए जाने वाले एंटीऑक्सीडेंट, विटामिन और खनिज, इसे कार्यात्मक खाद्य पदार्थो और पेय पदार्थो में एक मूल्यवान घटक बनाती है।
- **एंटीऑक्सीडेंट युक्त पेय:** लीची के रस और अर्क को एंटीऑक्सीडेंट युक्त पेय और सप्लीमेंट्स में शामिल किया जा सकता है।
- **रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने वाले उत्पाद:** लीची में उच्च विटामिन-बी की मात्रा इसे प्रतिरक्षा बढ़ाने वाले उत्पादों में एक संभावित घटक बनाती है।
- **जीर्णता रोधी उत्पाद:** लीची के एंटीऑक्सीडेंट गुण समय से पहले बुढ़ा होने से बचाने में मदद कर सकते हैं, जिससे यह एंटी-एजिंग त्वचा देखभाल उत्पादों में एक प्रमुख घटक बन जाता है। नियमित रुप से लीची का सेवन एंटीऑक्सीडेंट स्तर को बढ़ाने और शरीर के अंदर ऑक्सीडेटिव तनाव को कम करन में मदद करता है। इसके अलावा, लीची में मौजूद पॉलीफेनोल्स और फ्लेवोनोइड्स इंफ्लामेषन को कम करने में मदद करते हैं।

सौंदर्य प्रसाधन: एक प्राकृतिक क्रांति

लीची मे पाये जाने वाले विटामिन बी की उच्च मात्रा इसे त्वचा के स्वास्थ के लिए उत्कृष्ट बनाती है। त्वचा में पाए जाने कोलेजन के बनने के लिए विटामिन बी की आवश्यकता होती है, जो त्वचा की लचक

और दृढ़ता बनाए रखने में मदद करता है। कोलेजन संष्लेशण के बढ़ने से बढ़ती उम्र से संबंधित त्वचा की समस्याओं की शुरुआत में कम किया जा सकता है, जिससे लंबे समय तक युवा दिख सकते है। इसके अतिरिक्त, लीची में मौजूद एंटीऑक्सीडेंट त्वचा को किरणों और प्रदुषण से होने वाले नुकसान से बचाने में मदद करते हैं। ये त्वचा के काले दाग-धब्बे और उम्र के बढ़ने संबंधित अन्य लक्षणों को कम करता है। लीची के त्वचा-वर्धक गुण बाहरी अनुप्रयोग तक ही सीमित नहीं हैं; अपने आहार के हिस्से के रुप में इसका सेवन करने से त्वचा की अंदरुनी देखभाल होती है, जिससे त्वचा के स्वस्थ और उज्ज्वल चमक को बढ़ावा मिलता है। इसके अलावा, लीची के प्राकृतिक हाइड्रेटिंग गुण त्वचा को नमीयुक्त बनाये रखने में अहम् भूमिका निभाते हैं, जिससे सूखापन और पपड़ीदारपन की रोकथाम में सहयता मिलती है।

- **त्वचा देखभाल संबंधित उत्पाद:** लीची के एंटीऑक्सीडेंट और एंटी इंफ्लामेटरी गुण इसे त्वचा की देखभाल संबंधित उत्पादों मे एक प्रमुख घटक बनात है।
- **एंटी-एजिंग क्रीम और सीरम:** लीची का अर्क झुर्रियों और महीन रेखाओं की उपस्थिति को कम करने में मदद कर सकता है।
- **त्वचा को चमकदार बनाने वाले उत्पाद:** फल मे पाए जाने वाले विटामिन-बी त्वचा को चमकदार बनाने और हाईपरपिग्मेंटेषन को कम करने में मदद कर सकती है।
- **मॉइस्चराइजिंग उत्पाद:** लीची के हाइड्रेटिंग गुण त्वचा को नमीयुक्त और कोमल बनाए रखने में मदद करता है।
- **बालों की देखभाल संबंधित उत्पाद:** लीची का अर्क बालों के स्वास्थ के लिए भी काफि फायदेमंद हो पाया गया है।
- **शेंपू और कंडीशनर:** लीची का अर्क बालों के पोषण को मजबूती देने में मदद करता है।
- **बाल मास्क:** लीची से बने हेयर मास्क बालों में चमक और नमी लाने में मदद करते है।

भविष्य की संभावनाएँ: उभरती प्रौद्योगिकियाँ

- **नैनोटेकनोलॉजी:** नैनोटेकनोलॉजी का प्रयोग कर के लीची आधारित उत्पादों की जैव उपलब्धता और प्रभावकारिता बढ़ाने के क्षेत्र में अनुसंधान की जा रही है।
- **नैनो पार्टिकल:** टारगेट कोशिकाओं तक उनके अवषोशण और वितरण को बेहतर बनाने के लिए लीची के अर्क को नैनोकणों मे संपुटित किया जा सकता है।
- **जैव प्रौद्योगिकी:** बेहतर पोषण मूल्य और उच्चतर रोग प्रतिरोधक क्षमता वाली लीची की नई किस्में विकसित करने के लिए जैव प्रौद्योगिकी तकनीकों का उपयोग भविष्य में एक नया आयाम स्थापित करने वाला है।
- **जेनेटिक इंजीरियरिंग:** लीची के पौधों को संषोधित करने के लिए जेनेटिक इंजीनियरिंग का उपयोग किया जा सकता है जिससे उच्च पैदावार के साथ-साथ पोषकता भी बढ़ोतरी की काफी संभावना है।

निष्कर्ष

लीची, जिसका आनंद एक समय मुख्य रुप से मौसमी व्यंजन के रुप में लिया जाता था, अब थाली से परे अपने विविध अनुप्रयोगों के लिए तेजी से पहचान प्राप्त कर रही है। लीची के स्वादिष्ट व्यंजनों और स्वास्थ्य-बर्धक उत्पादों से लेकर नवोन्मेशी सौंदर्य साधनों तक, उद्योगों की एक विस्तृत श्रंखला में एक प्रमुख घटक बनने की ओर अग्रसर है। निरंतर अनुसंधान और विकास के साथ सतत् प्रयासों से इस बहुमुखी फल की क्षमता को और अधिक उजागर किया जा सकेगा, जिससे विश्व में इसकी निरंतर प्रासंगिकता सुनिष्चित होगी जो तेजी से प्राकृतिक और अभिनव समाधानों की सम्भावनाओं को उजागर करने का मार्ग प्रशस्त करेगा।

10. भारतीय कृषि पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव

प्रभात कुमार[1], शिव शंकर प्रसाद[2], अभय कुमार[1], रामाशीष कुमार[1] एवं सोमेश कुमार[1]

[1]भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र, मुजफ्फरपुर, बिहार, [2]डॉ. राजेंद्र प्रसाद केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर, बिहार

वैश्विक जलवायु परिवर्तन एक गंभीर समस्या है, जहाँ मानव गतिविधियों के कारण पृथ्वी अभूतपूर्व बदलावों का सामना कर रही है। साल 1972 में ***"क्लब ऑफ रोम"*** की रिपोर्ट ने पहली बार आधिकारिक रूप से यह स्वीकार किया कि ग्लोबल वार्मिंग एक अंतरराष्ट्रीय चिंता का विषय है। इसके बाद विश्व मौसम विज्ञान संगठन (WMO) और संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) ने भी यह स्पष्ट किया कि कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) जलवायु परिवर्तन का मुख्य कारण है, क्योंकि इसका योगदान वैश्विक तापमान वृद्धि में सबसे अधिक है। औद्योगिक युग से पहले की तुलना में वैश्विक औसत तापमान लगभग 1.2^{0}C तक बढ़ चुका है। आईपीसीसी (IPCC) की 2024 की रिपोर्ट के अनुसार, मौसम की चरम घटनाओं—जैसे कि बाढ़, सूखा, लू और तूफान—की तीव्रता और आवृत्ति में वृद्धि हुई है, जिसमें 2010 के बाद से 30% तक बढ़ोतरी दर्ज की गई है। बर्फीली चट्टानों के पिघलने और समुद्र के जल के तापमान विस्तार के कारण समुद्र स्तर हर साल 4.8 मिमी की तेज़ दर से बढ़ रहा है, जिससे तटीय क्षेत्रों को गंभीर खतरा उत्पन्न हो गया है। हालाँकि पेरिस समझौते जैसे अंतरराष्ट्रीय प्रयासों का लक्ष्य तापमान वृद्धि को 1.5^{0}C तक सीमित करना है, लेकिन वर्तमान रुझानों के अनुसार यदि कठोर उपाय नहीं अपनाए गए, तो 2100 तक तापमान में 2.5 से 3^{0}C तक की वृद्धि संभव है। यह स्थिति वैश्विक स्तर पर तुरंत और सशक्त कार्रवाई की आवश्यकता को रेखांकित करती है। जलवायु और कृषि के बीच गहरा और सीधा संबंध है। जलवायु में मामूली बदलाव भी कृषि पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है, जिससे उत्पादन क्षमता में गिरावट देखने को मिलती है इसलिए, वैश्विक जलवायु परिवर्तनों के कृषि पर पड़ने वाले प्रभावों का समुचित मूल्यांकन करना बेहद आवश्यक है, ताकि खेती की पद्धतियों को नई परिस्थितियों के अनुसार ढालकर कृषि उत्पादन में वृद्धि की जा सके।

भारतीय कृषि पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

जलवायु परिवर्तन भारत की कृषि व्यवस्था को बदल रहा है, जो देश की विशाल आबादी को खिलाने और अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जलवायु परिवर्तन भारतीय कृषि पर भारी आर्थिक प्रभाव डाल रहा है, कृषि एक ऐसा क्षेत्र है जिस पर देश का 50% से अधिक कार्यबल निर्भर है और इसका सकल घरेलू उत्पाद में लगभग 18% योगदान है। बढ़ते तापमान, अनियमित मानसून और मौसम की चरम घटनाओं का प्रभाव खाद्यान्न, बागवानी, पशुधन, पोल्ट्री, मिट्टी के गुण, जल उपलब्धता, अनियमित वर्षा और जैव विविधता पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। यह लेख इन प्रभावों की पड़ताल करता है और कार्बन अनुश्लेषण और बायोचार जैसी नवीन रणनीतियों सहित अनुकूलन रणनीतियों और नीतियों को उजागर करता है ताकि कृषि क्षेत्र को अधिक सशक्त बनाया जा सके।

खाद्यान्न पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

भारत का खाद्यान्न उत्पादन, जो राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है, जलवायु परिवर्तन के दबाव में है। भा.कृ.अनु.प. की 2025 की रिपोर्ट के अनुसार वर्षा पर निर्भर चावल की पैदावार में 2050 तक 20% और 2080 तक 47% की गिरावट आने की संभावना है, जबकि सिंचित चावल की पैदावार में 2050 तक 3.5% और 2080 तक 5% की गिरावट का अनुमान है। उत्तरी भारत में प्रमुख फसल गेहूं की पैदावार 2050 तक 19.3% और 2080 तक 40% तक घट सकती है, जिसका प्रमुख कारण विकास चरणों के दौरान अत्यधिक गर्मी का तनाव है। ये अनुमान हाल के वर्षों में देखे गए रुझानों को दर्शाते हैं। खाद्य एवं कृषि संघटन की रिपोर्ट 2024 के द्वारा चेतावनी दी गई है कि गंभीर जलवायु परिदृश्यों के तहत 2080 तक खाद्यान्न उत्पादन में 47% की गिरावट हो सकती है। इंटरनेशनल फूड पॉलिसी रिसर्च इंस्टिट्यूट की 2022 की ग्लोबल फूड पॉलिसी रिपोर्ट के अनुसार, जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि उत्पादन में गिरावट और आपूर्ति श्रृंखलाओं में बाधा से 2030 तक कई भारतीयों को भूख का सामना करना पड़ सकता है।

अनियमित मानसून इन चुनौतियों को और बढ़ा देते हैं। आरबीआई की 2025 की रिपोर्ट में उल्लेख है कि जून-जुलाई में अपर्याप्त वर्षा अनाज और दालों की पैदावार को प्रभावित करती है, जबकि अगस्त-सितंबर में अत्यधिक वर्षा तिलहन की फसलों को प्रभावित करती है। मकई की पैदावार में 0.011% की कमी और दालों की पैदावार में 1% वर्षा वृद्धि पर 0.33% की वृद्धि देखी गई। ये परिवर्तन भारत की घरेलू मांग पूरी करने की क्षमता को खतरे में डालते हैं, जिससे खाद्य मुद्रास्फीति पर असर पड़ता है।

तालिका: 1. खाद्यान्न पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

फसल	2050 प्रक्षेपण	2080 का अनुमान
वर्षा आधारित चावल	20% उपज में कमी	47% उपज में कमी
सिंचित चावल	3.5% उपज में कमी	5% उपज में कमी
गेहूँ	19.3% उपज में कमी	40% उपज में कमी
खरीफ मक्का	18% उपज में कमी	23% उपज में कमी

बागवानी पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

बागवानी, जो ग्रामीण आय और पोषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न चुनौतियों का सामना कर रही है। वैज्ञानिक शोध में पाया गया है कि सर्दियों में औसत तापमान में वृद्धि के कारण आम और लीची में जल्दी फूल खिल जा रहे है, जिससे फसल चक्र बदल रहा है । वैज्ञानिक अध्ययन के अनुसार भविष्य में वर्षा में कमी

और जल की लवणता बढ़ने से फलों की पैदावार में 21–28% तक की गिरावट आ सकती है, जिसमें अंगूर, केला और खट्टे फल सबसे अधिक प्रभावित होंगे। अध्ययन में यह पता चला कि कई फसलो में तापमान, वर्षा और पैदावार के बीच विपरीत संबंध हैं, जिससे बागवानी आम, केला, पपीता और चीकू की जलवायु संवेदनशीलता स्पष्ट होती है।

तापमान में 0.7–1.0 ^{0}C वृद्धि से दशहरी जैसे आम की किस्मों के लिए उपयुक्त क्षेत्र कम हो सकते हैं, जबकि अल्फांसो केवल रत्नागिरी जैसे सीमित क्षेत्रों में ही टिक पाएगा। लीची के लिए, बिहार जैसे पारंपरिक क्षेत्र अब कम उपयुक्त हो रहे हैं, क्योंकि वहाँ 12°C से नीचे के दिनों की संख्या घट रही है और अधिकतम तापमान बढ़ रहा है। वहीं, देहरादून और पठानकोट जैसे ऊँचाई और अक्षांश वाले क्षेत्र भविष्य में लीची उत्पादन के लिए अधिक उपयुक्त बन सकते हैं। आम और लीची की गुणवत्ता उच्च तापमान के कारण प्रभावित होती है, जिससे फल अनियमित ढंग से बनते हैं, फटते हैं, जलते हैं, और तुराई के बाद सड़न के कारण बाज़ार मूल्य में कमी आती है। आम में फूल आने के दौरान वर्षा एन्थ्रेक्नोज़ जैसी बीमारियाँ बढ़ा देती है, जिससे छिलके की गुणवत्ता प्रभावित होती है। सब्जियों को भी इसी तरह के दबाव का सामना करना पड़ता है। आलू में गर्मी के तनाव से कंद का आकार छोटा होता है और हरी पत्तेदार सब्जियों में जल की कमी से पैदावार प्रभावित होती है। जलवायु-सहिष्णु किस्मों और आधुनिक सिंचाई तकनीकों को अपनाने बागवानी क्षेत्र को चरम मौसम से बचाया जा सकता है।

पशुपालन और मुर्गीपालन पर प्रभाव

भारत का पशुपालन क्षेत्र, जिसमें 535 मिलियन से अधिक पशु हैं, जलवायु तनाव के प्रति अत्यधिक संवेदनशील है। एक अध्ययन के अनुसार तापमान बढ़ने से दूध उत्पादन में 50% तक की गिरावट हो सकती है। मवेशियों के लिए आदर्श तापमान 16–25°C होता है; इससे अधिक तापमान पर उत्पादन घटने लगता है। वैज्ञानिक शोध में पाया गया है प्रत्येक 1% तापमान वृद्धि पर पशु उत्पादन में कम से कम 10% की गिरावट हो सकती है। सूखे के कारण चारे की उपलब्धता कम होती है और बीमारियाँ, वेक्टर जनित रोग, उत्पादन को खतरे में डालते हैं। पोल्ट्री, जो 6–15% वार्षिक वृद्धि दर के साथ भारत के जीडीपी में 1% का योगदान देती है, गर्मी के तनाव से प्रभावित होती है, जिससे चारे का सेवन और अंडों की गुणवत्ता घटती है। वैज्ञानिक अध्ययन में पाया गया की पानी और चारे की कमी और रूमिनेंट्स से मीथेन उत्सर्जन जैसे प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष जिससे जलवायु परिवर्तन और भी बढ़ता है।

मिट्टी की गुणवत्ता पर प्रभाव

कृषि की नींव मानी जाने वाली मिट्टी भी जलवायु परिवर्तन के प्रभाव से क्षतिग्रस्त हो रही है। भा.कृ.अनु.प. की 2025 की रिपोर्ट के अनुसार, भारी वर्षा के कारण 2050 तक प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष 10 टन मिट्टी का नुकसान होगा, जिससे उर्वरता घटेगी। क्षारीयता से प्रभावित क्षेत्र 2030 तक 7 मिलियन हेक्टेयर से बढ़कर 11 मिलियन हो सकते हैं। गर्मी के तनाव से पोषक तत्व बहने लगते हैं, जिससे रासायनिक गुण प्रभावित होते हैं। वैज्ञानिक अध्ययन में पाया गया की मिट्टी में जैविक कार्बन की मात्रा घटती है। मिट्टी में पाए जाने वाले सूक्ष्म जीवों की गतिविधियाँ भी प्रभावित होती हैं, जिससे पोषक चक्र और फसल विकास में बाधा आती है।

जल उपलब्धता पर प्रभाव

सिंचाई के लिए आवश्यक जल की उपलब्धता पर भी खतरा मंडरा रहा है। अनियमित मानसून के कारण मिट्टी की जलधारण क्षमता घट रही है। भा.कृ.अनु.प. के अनुसार 2050 तक खरीफ वर्षा में 9–10.1% की वृद्धि होगी, लेकिन यह जल अवशोषण की बजाय बहाव के रूप में होगी। भूजल स्तर लगातार गिर रहा है, जबकि भारत सिंचाई के लिए 60% भूजल पर निर्भर करता है, जो सूखे की स्थिति में टिकाऊ नहीं है। इसका असर फसल की पैदावार और पशुओं की जल आपूर्ति पर पड़ता है, जिससे कृषि संकट और गहराता है।

वर्षा और मानसून पर प्रभाव

भारतीय कृषि के लिए जीवनरेखा माने जाने वाले मानसून अब अनियमित हो रहे हैं। भा.कृ.अनु.प. की 2025 रिपोर्ट के अनुसार 2050 तक खरीफ वर्षा में 9–10.1% और 2080 तक 5.5–18.9% की वृद्धि की संभावना है, लेकिन साथ ही कुछ क्षेत्रों में सूखा बढ़ने की चेतावनी भी दी गई है, जिससे कृषि चक्र प्रभावित होते हैं। आरबीआई के 2025 के अध्ययन में बारिश में बदलाव के प्रति मक्का संवेदनशील है, साथ ही अपर्याप्त बारिश से अनाज को नुकसान पहुंचता है और अत्यधिक बारिश से बाढ़ आती है, जिससे पैदावार प्रभावित होती है। रबी सीज़न में वर्षा 2050 तक 12–17% और 2080 तक 13–26% तक बढ़ सकती है, जिससे नमी संतुलन और फसल चक्र बदल सकते हैं।

तालिका: 2. जलवायु परिवर्तन का मिट्टी एवं वर्षा पर प्रभाव

विषय	विवरण
मृदा अपरदन	भारी वर्षा के कारण 2050 तक प्रति वर्ष 10 टन प्रति हेक्टेयर की वृद्धि का अनुमान है
लवणता प्रभावित क्षेत्र	2030 तक 7 मिलियन हेक्टेयर से बढ़कर 11 मिलियन हेक्टेयर हो जाएगा, जिससे कृषि योग्य भूमि कम हो जाएगी
खरीफ वर्षा में वृद्धि	2050 तक 9-10.1%, 2080 तक 5.5-18.9% की अनुमानित वृद्धि
रबी वर्षा में वृद्धि	2050 तक 12-17%, 2080 तक 13-26% की अपेक्षित वृद्धि

प्राकृतिक जैव विविधता पर प्रभाव

जलवायु परिवर्तन जैव विविधता के लिए खतरा है। गर्मी और जल की कमी के कारण स्थानिक पौधों और जानवरों के आवास प्रभावित हो रहे हैं। आईपीसीसी की 2024 रिपोर्ट के अनुसार, पश्चिमी घाट जैसे भारत के जैव विविधता हॉटस्पॉट संकट में हैं, और प्रजातियों के विलुप्त होने से परागण और कीट नियंत्रण जैसे कृषि के लिए आवश्यक पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएँ बाधित हो सकती हैं।

नियंत्रण, अनुकूलन और नीतियाँ

अनुकूलन उपायों में सूखा-प्रतिरोधी फसलें, ड्रिप सिंचाई जैसी कुशल जल प्रबंधन प्रणालियाँ और वर्षा जल संचयन शामिल हैं, जिन्हें ***"राष्ट्रीय सतत कृषि मिशन"*** के तहत प्रोत्साहित किया जा रहा है। भा..कृ.अनु.प.ने 2014 से अब तक 1888 जलवायु-सहिष्णु किस्में विकसित की हैं, जिनमें नमक-सहनशील और ताप-सहनशील फसलें शामिल हैं। ***"प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना"*** जैसे फसल बीमा और आधुनिक तकनीकों पर सब्सिडी जैसी नीतियाँ अत्यंत आवश्यक हैं। कार्बन अवशोषण एक आशा की किरण है, जिसमें मिट्टी और पौधे कार्बन डाईऑक्साइड (CO_2) को अवशोषित करते हैं। जैवचार, जो जैविक अपशिष्ट से बना कोयला-जैसा पदार्थ है, मिट्टी में कार्बन भंडारण और जलधारण क्षमता को बढ़ाता है, जिससे मिट्टी का स्वास्थ्य सुधरता है और उत्सर्जन कम होता है। भारत का 2030 तक 450 गीगावाट नवीकरणीय ऊर्जा का लक्ष्य ***पेरिस समझौते*** के तहत वैश्विक प्रतिबद्धताओं के अनुरूप है, जो उत्सर्जन को घटाकर कृषि को अधिक टिकाऊ और सहनशील बनाता है।

निष्कर्ष

जलवायु परिवर्तन भारतीय कृषि के लिए एक गंभीर चुनौती पेश कर रहा है, जिससे खाद्य उत्पादन, जल उपलब्धता, मृदा उर्वरता, और जैव विविधता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। अनुकूलन रणनीतियों और नीतियों को अपनाकर इस चुनौती का सामना किया जा सकता है।

11. उद्यानिकी संपदा का संरक्षण: ग्रामीण विकास की दिशा में एक कदम

अभय कुमार[1], प्रतिभा सिंह[2], सुनील कुमार[1], भाग्या विजयन[1] एवं सुजीत कुमार बिशी[3]

[1]भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर, बिहार, [2]महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार, [3]भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि जैवप्रौद्योगिकी संस्थान, रांची, झारखंड

उद्यानिकी आनुवंशिक संसाधनों का संरक्षण और सतत उपयोग ग्रामीण भारत के सामाजिक-आर्थिक विकास और खाद्य सुरक्षा के लिए अत्यंत आवश्यक है। फल, सब्जियाँ, मसाले और सजावटी पौधों जैसी उद्यानिकी फसलें पोषण, आय सृजन और सांस्कृतिक विरासत के लिए महत्वपूर्ण हैं। भारत की विविध जलवायु और भौगोलिक परिस्थितियाँ विभिन्न प्रकार की उद्यानिकी प्रजातियों की खेती के लिए एक अनूठा अवसर प्रदान करती हैं, जिससे देश उद्यानिकी जैव विविधता के मामले में विश्व के सबसे समृद्ध देशों में से एक बन गया है। हालांकि, यह आनुवंशिक संपदा प्राकृतिक आवासों के नुकसान, जलवायु परिवर्तन और अस्थायी कृषि प्रथाओं के कारण खतरे में है। इसलिए, इन अमूल्य संसाधनों को संरक्षित करने और ग्रामीण विकास में इनका लाभ उठाने के लिए व्यवस्थित संरक्षण प्रयास आवश्यक हैं।

व्यवस्थित संरक्षण

उद्यानिकी आनुवंशिक संसाधनों का व्यवस्थित संरक्षण पौधों की आनुवंशिक सामग्री को एक समन्वित ढंग से एकत्रित करने, संरक्षित करने और उपयोग करने की प्रक्रिया है। यह दृष्टिकोण विविध आनुवंशिक लक्षणों की उपलब्धता सुनिश्चित करता है, जो कि पादप प्रजनन कार्यक्रमों, अनुसंधान और जैव विविधता बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं। व्यवस्थित संरक्षण रणनीतियों में इन-सीटू (*in situ*) और एक्स-सीटू (*ex situ*) दोनों विधियाँ शामिल हैं:

इन-सीटू संरक्षण

इस विधि में प्रजातियों को उनके प्राकृतिक आवासों में संरक्षित किया जाता है, जिससे वे पर्यावरणीय परिवर्तनों के अनुकूल स्वयं को विकसित और अनुकूलित कर सकें। यह विधि पारंपरिक कृषि प्रणालियों को समर्थन देती है, जो सदियों से पौधों की विविधता का संरक्षण करती आ रही हैं और पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने में सहायक होती है।

एक्स-सीटू संरक्षण

इस विधि में पौधों की आनुवंशिक सामग्री को उनके प्राकृतिक आवासों के बाहर संरक्षित किया जाता है, जैसे बीज बैंक, क्षेत्रीय जीन बैंक और वनस्पति उद्यान। यह इन-सीटू संरक्षण का पूरक है और प्राकृतिक आपदाओं या मानवजनित खतरों के दौरान संसाधनों की सुरक्षा सुनिश्चित करता है।

बढ़ती मांग

जनसंख्या वृद्धि, शहरीकरण और बदलती आहार प्राथमिकताओं के कारण भारत में उद्यानिकी फसलों की मांग में भारी वृद्धि हुई है। इन फसलों के स्वास्थ्य लाभों और कुपोषण से लड़ने की उनकी भूमिका के कारण इनकी महत्ता और भी बढ़ गई है। इस बढ़ती मांग को देखते हुए इन फसलों की गुणवत्ता और उत्पादन क्षमता को बढ़ाना अत्यंत आवश्यक हो गया है। इस संदर्भ में, उच्च गुणवत्ता वाली रोपण सामग्री की सतत आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए आनुवंशिक संसाधनों का संरक्षण और भी महत्वपूर्ण हो जाता है, ताकि नई किस्मों का विकास किया जा सके जो बाजार की मांगों को पूरा कर सकें और जैविक तथा अजैविक तनावों का सामना कर सकें।

इन-सीटू संरक्षण पर बढ़ता ध्यान

हाल के वर्षों में उद्यानिकी फसलों के *इन-सीटू* संरक्षण पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। यह इस समझ पर आधारित है कि पौधों को उनके प्राकृतिक आवासों में संरक्षित करने से केवल आनुवंशिक सामग्री ही नहीं, बल्कि उनसे जुड़ी पारिस्थितिक परस्पर क्रियाएँ और सांस्कृतिक परंपराएँ भी संरक्षित रहती हैं। *इन-सीटू* संरक्षण पौधों को बदलते पर्यावरण के अनुरूप ढलने की क्षमता प्रदान करता है, जिससे उनकी सहनशीलता बनी रहती है। इसके अंतर्गत प्राकृतिक प्रजातियों के जंगली रिश्तेदारों का संरक्षण, पारंपरिक बागों और सामुदायिक रूप से प्रबंधित कृषिवानिकी प्रणालियों की रक्षा शामिल है। ये उपाय जैव विविधता के संरक्षण के साथ-साथ ग्रामीण समुदायों की आजीविका को भी बनाए रखते हैं।

आनुवंशिक संसाधनों के लिए मूल्य श्रृंखला का विकास

उद्यानिकी आनुवंशिक संसाधनों के लिए मूल्य श्रृंखला का विकास उत्पादन से उपभोग तक एक व्यवस्थित प्रक्रिया बनाता है, जिसमें प्रत्येक चरण अंतिम उत्पाद में मूल्य जोड़ता है। यह दृष्टिकोण आनुवंशिक संसाधनों से अधिकतम आर्थिक लाभ प्राप्त करने, बाजार तक बेहतर पहुँच सुनिश्चित करने और ग्रामीण समुदायों की आजीविका में सुधार लाने के लिए आवश्यक है। मूल्य श्रृंखला विकास के प्रमुख घटक हैं:

उत्पादन: गुणवत्तापूर्ण रोपण सामग्री के उपयोग, उन्नत कृषि पद्धतियों और टिकाऊ तकनीकों को अपनाकर उद्यानिकी उत्पादों की गुणवत्ता और मात्रा में सुधार करना।

प्रसंस्करण: सुखाने, कैनिंग, रस निकालने जैसे प्रसंस्करण उपायों के माध्यम से कच्चे उत्पादों में मूल्य वृद्धि करना, जिससे उनकी शेल्फ लाइफ बढ़ती है और बाजार में मांग भी।

विपणन: किसानों को उचित मूल्य दिलाने हेतु मजबूत बाजार संपर्क स्थापित करना। इसमें किसान सहकारी समितियों का विकास, प्रत्यक्ष विपणन चैनल, और डिजिटल प्लेटफॉर्म्स का उपयोग शामिल है।

वितरण: फसल के बाद की हानियों को न्यूनतम करने और ताजे उत्पादों को समय पर बाजार तक पहुँचाने के लिए प्रभावी लॉजिस्टिक्स और परिवहन व्यवस्था सुनिश्चित करना।

इन पहलुओं पर ध्यान केंद्रित कर मूल्य श्रृंखला का विकास उद्यानिकी क्षेत्र की आर्थिक व्यवहार्यता को काफी हद तक बढ़ा सकता है और ग्रामीण आबादी की आजीविका में महत्वपूर्ण सुधार ला सकता है।

आनुवंशिक संसाधनों की खोज और संग्रहण

उद्यानिकी आनुवंशिक संसाधनों की खोज और संग्रहण जैव विविधता के संरक्षण और प्रजनन, अनुसंधान तथा सतत कृषि के लिए विविध पौध सामग्री की उपलब्धता सुनिश्चित करने की आधारशिला है। भारत जैसे देश में, जहाँ समृद्ध कृषि-जैव विविधता पर आवास विनाश, जलवायु परिवर्तन और अस्थिर कृषि प्रथाओं जैसे विभिन्न कारकों से खतरा मंडरा रहा है, ये प्रयास अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। व्यवस्थित खोज और संग्रहण प्रयास जंगली प्रजातियों, देशी किस्मों और पारंपरिक खेती की किस्मों में पाए जाने वाले मूल्यवान आनुवंशिक लक्षणों की पहचान, प्रलेखन और संरक्षण में मदद करते हैं, जो उद्यानिकी फसलों की लचीलापन और उत्पादकता बढ़ाने के लिए अत्यंत आवश्यक हैं।

जैव विविधता का संरक्षण: विविध आनुवंशिक सामग्री एकत्र करके, हम उन अनूठे लक्षणों का संरक्षण सुनिश्चित करते हैं जो भविष्य के प्रजनन कार्यक्रमों के लिए महत्वपूर्ण हो सकते हैं।

प्रजनन और अनुसंधान: एकत्र किए गए आनुवंशिक संसाधन नई किस्मों के प्रजनन के लिए उपयुक्त सामग्री प्रदान करते हैं, जिनमें रोग प्रतिरोध, सूखा सहनशीलता और पोषण गुणवत्ता में सुधार जैसे लक्षण शामिल होते हैं।

जलवायु परिवर्तन के प्रति लचीलापन: आनुवंशिक विविधता ऐसी फसलों के विकास के लिए आवश्यक है जो बदलती जलवायु परिस्थितियों का सामना कर सकें, जिससे खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित होती है।

सांस्कृतिक विरासत: कई पारंपरिक किस्में और जंगली रिश्तेदार सांस्कृतिक महत्व रखते हैं और स्थानीय समुदायों की विरासत और प्रथाओं का अभिन्न हिस्सा होते हैं।

खोज और संग्रहण की कार्यप्रणालियाँ

सर्वेक्षण और प्रलेखन

जैव विविधता हॉटस्पॉट्स: उन क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित करें जहाँ जैव विविधता अधिक है, जैसे कि पश्चिमी घाट, पूर्वी हिमालय और अंडमान व निकोबार द्वीप समूह। ये क्षेत्र स्थानिक प्रजातियों से भरपूर होते हैं और आनुवंशिक विविधता का खजाना प्रदान करते हैं।

पारंपरिक कृषि पारिस्थितिकी तंत्र: पारंपरिक कृषि प्रणालियों और घरेलू उद्यानों का अध्ययन और प्रलेखन करें, जहाँ स्थानीय समुदायों द्वारा संरक्षित विविध प्रकार की उद्यानिकी फसलें पाई जाती हैं।

संग्रहण रणनीतियाँ

जंगली प्रजातियाँ: उगाई जाने वाली उद्यानिकी फसलों की जंगली प्रजातियों के नमूने एकत्र करें। इनमें अक्सर कीट प्रतिरोध और पर्यावरणीय अनुकूलन जैसे लक्षण होते हैं, जो उगाई जाने वाली किस्मों में नहीं होते।

देशी किस्में और पारंपरिक जातियाँ: उन पारंपरिक किस्मों से बीज और पौध सामग्री एकत्र करें जो पीढ़ियों से उगाई जा रही हैं। ये स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल होती हैं और मूल्यवान आनुवंशिक लक्षणों का भंडार होती हैं।

किसानों के साथ सहयोग: स्थानीय किसानों और जनजातीय समुदायों के साथ सहयोग करके आनुवंशिक संसाधनों तक पहुँच और संग्रहण करें। किसानों का ज्ञान और उनकी पारंपरिक पद्धतियाँ अनूठी किस्मों की पहचान और संरक्षण में अत्यंत सहायक होती हैं।

संग्रहण की तकनीकें

बीज संग्रहण: फलों, सब्जियों और अन्य उद्यानिकी फसलों से बीज एकत्र करें। बीजों की पहचान और स्रोत की जानकारी बनाए रखने के लिए उपयुक्त लेबलिंग और प्रलेखन सुनिश्चित करें।

वनस्पति सामग्री संग्रहण: जिन फसलों का प्रवर्धन वानस्पतिक भागों द्वारा होता है (जैसे केला), उनके कटिंग, कंद या अन्य भागों को एकत्र करें। एकत्रित सामग्री की जीवितता बनाए रखने के लिए उचित विधियों का प्रयोग करें।

ऊतक संवर्धन: उन पौधों के संग्रहण के लिए ऊतक संवर्धन तकनीकों का उपयोग करें जिन्हें बीज या वानस्पतिक भागों से उगाना कठिन होता है। यह विधि नियंत्रित वातावरण में आनुवंशिक सामग्री के संरक्षण की अनुमति देती है।

खोज और संग्रहण में चुनौतियाँ

दुर्गमता: कई जैव विविधता से समृद्ध क्षेत्र दूरस्थ और कठिन पहुँच वाले होते हैं, जिससे खोज और संग्रहण कार्य में लॉजिस्टिक कठिनाइयाँ आती हैं।

जलवायु परिवर्तन: बदलती जलवायु स्थितियाँ पौधों की वितरण प्रणाली को प्रभावित कर सकती हैं, जिससे विशिष्ट आनुवंशिक संसाधनों को ढूंढना और एकत्र करना कठिन हो जाता है।

आनुवंशिक ह्रास: आवास विनाश, अत्यधिक दोहन और पारंपरिक किस्मों के स्थान पर आधुनिक हाइब्रिड किस्मों के उपयोग के कारण आनुवंशिक विविधता का क्षरण हो रहा है, जिससे मूल्यवान लक्षणों की उपलब्धता संकट में है।

सामुदायिक सहभागिता: स्थानीय समुदायों का सहयोग और भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए विश्वास निर्माण और प्रोत्साहनों की आवश्यकता होती है, जो विविध सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों में एक चुनौती हो सकती है।

उद्यानिकी आनुवंशिक संसाधनों का मानव और सामाजिक पक्ष

उद्यानिकी आनुवंशिक संसाधनों का संरक्षण केवल वैज्ञानिक या तकनीकी प्रयास नहीं है, बल्कि यह मानवीय और सामाजिक पहलुओं से भी गहराई से जुड़ा हुआ है। स्थानीय समुदाय, विशेष रूप से ग्रामीण

और आदिवासी क्षेत्र के लोग, पारंपरिक फसलों और स्थानीय किस्मों के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी इन समुदायों ने विशिष्ट जलवायु और सांस्कृतिक परिस्थितियों में उपयुक्त फसलों को संरक्षित और विकसित किया है। इसलिए, इनके अनुभव, ज्ञान और सहभागिता के बिना कोई भी संरक्षण प्रयास दीर्घकालिक रूप से सफल नहीं हो सकता।

समुदाय की भागीदारी का महत्त्व

पारंपरिक ज्ञान और अनुभव: स्थानीय समुदायों के पास उद्यानिकी फसलों से जुड़ी गहरी पारंपरिक समझ होती है, जैसे कि फसलों की बुआई का समय, जलवायु अनुकूलन, कीट-रोग प्रतिरोध, और औषधीय या पोषण संबंधी उपयोग। यह ज्ञान वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए एक अमूल्य संसाधन है और इसे मान्यता देना अत्यंत आवश्यक है।

सांस्कृतिक और धार्मिक महत्ता: कई उद्यानिकी फसलें जैसे तुलसी, केला, आम, नारियल आदि धार्मिक और सांस्कृतिक अनुष्ठानों का अभिन्न हिस्सा हैं। इन फसलों से जुड़ी मान्यताएँ, रीति-रिवाज़ और परंपराएँ सामाजिक जीवन को गहराई से प्रभावित करती हैं। जब संरक्षण कार्यों में इन सांस्कृतिक पहलुओं को शामिल किया जाता है, तो लोगों की भागीदारी और समर्थन स्वतः ही बढ़ जाता है।

सामाजिक-आर्थिक सशक्तिकरण: जब स्थानीय स्तर पर विविध और पारंपरिक फसलों का संरक्षण और उपयोग किया जाता है, तो यह ग्रामीण लोगों को पोषण, खाद्य सुरक्षा, और वैकल्पिक आय के साधन प्रदान करता है। जैविक कृषि, पारंपरिक फलों की बिक्री, और स्थानीय उत्पादों की ब्रांडिंग से इन समुदायों को आर्थिक रूप से मजबूती मिल सकती है।

समुदाय की भागीदारी बढ़ाने की रणनीतियाँ

क्षमता निर्माण और प्रशिक्षण: स्थानीय किसानों और महिला समूहों को संरक्षण तकनीकों, बीज संरक्षण, जैविक खेती, और विपणन की जानकारी देना अत्यंत आवश्यक है। प्रशिक्षण शिविर, प्रदर्शन परियोजनाएँ, और स्थानीय भाषा में तैयार सामग्री इसके लिए उपयोगी होती हैं।

सहभागिता आधारित दृष्टिकोण: संरक्षण संबंधी निर्णयों में स्थानीय समुदायों को सहभागी बनाना चाहिए। इससे वे केवल लाभार्थी नहीं बल्कि संरक्षण के सक्रिय भागीदार बन जाते हैं। ग्राम समितियाँ, स्वयं सहायता समूह, और किसान संगठनों के माध्यम से निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया में उनकी भागीदारी सुनिश्चित की जा सकती है।

लाभों का न्यायसंगत बँटवारा: यदि किसी समुदाय की पारंपरिक किस्मों या ज्ञान से कोई नया उत्पाद, किस्म या तकनीक विकसित होती है, तो समुदाय को उसके आर्थिक और सामाजिक लाभों में भागीदारी मिलनी चाहिए। यह जैव-संसाधन न्याय की भावना को सुदृढ़ करता है। इसके तहत रोपण सामग्री, तकनीकी सहायता, बाज़ार तक पहुँच और लाभांश शामिल हो सकते हैं।

ग्रामीण लोगों की आय सृजन में उद्यानिकी आनुवंशिक संसाधनों की भूमिका

उद्यानिकी आनुवंशिक संसाधनों का संरक्षण और उनका विवेकपूर्ण एवं सतत उपयोग न केवल जैव विविधता के संरक्षण के लिए आवश्यक है, बल्कि यह ग्रामीण समुदायों के लिए आय और आजीविका के सशक्त साधन के रूप में उभर रहे हैं। विविध जलवायु परिस्थितियों और पारंपरिक कृषि पद्धतियों में उपजे इन संसाधनों में विशिष्ट गुण होते हैं, जिनका प्रयोग कर ग्रामीण किसान स्थानीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और वैश्विक बाज़ारों में प्रतिस्पर्धी और उच्च मूल्य वाले उत्पाद तैयार कर सकते हैं। इन संसाधनों के माध्यम से न केवल आर्थिक संभावनाएं पैदा होती हैं, बल्कि पारंपरिक ज्ञान, जैविक कृषि, स्वास्थ्य, और सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण का मार्ग भी प्रशस्त होता है।

निष्कर्ष

बागवानी आनुवंशिक संसाधनों का संरक्षण और सतत उपयोग भारत में ग्रामीण जीवनयापन सुधारने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। प्रणालीबद्ध संरक्षण प्रयास, जिसमें *इन-सीटू* और *एक्स-सीटू* दोनों पद्धतियाँ शामिल हैं, आनुवंशिक विविधता को संरक्षित करते हैं और कृषि लचीलापन का समर्थन करते हैं। मूल्य श्रृंखला के विकास, समुदाय की भागीदारी और उन्नत कृषि पद्धतियों पर ध्यान केंद्रित करके, आनुवंशिक संसाधनों का संरक्षण ग्रामीण विकास और गरीबी उन्मूलन को बढ़ावा दे सकता है। अंततः, पारंपरिक ज्ञान, आधुनिक प्रौद्योगिकियों और नीति समर्थन का एकीकरण भारत में बागवानी आनुवंशिक संसाधनों के सतत संरक्षण और उपयोग को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है।

12. शहरी खाद्य उत्पादन में क्रांतिकारी बदलाव: ऊर्ध्वाधर खेती का उदय

अभय कुमार[1], सुनील कुमार[1], प्रतिभा सिंह[2], प्रभात कुमार[1] एवं विनोद कुमार[1]

[1]भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर, बिहार, [2]महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार

कृषि का आरंभ 11,000 वर्ष पूर्व हुआ था, और यह बहुत दिलचस्प है कि 20 वीं सदी में औद्योगिक कृषि के विकास और विभिन्न तकनीकी प्रगति के अलावा, तब से बहुत कुछ नहीं बदला है। इस लंबे समय में, हमने खेती के कई तरीके अपनाए हैं, लेकिन मूलभूत चुनौतियाँ अभी भी बनी हुई हैं। वर्तमान में हम एक गंभीर पर्यावरणीय संकट का सामना कर रहे हैं, साथ ही वैश्विक जनसंख्या लगातार बढ़ रही है। यह स्थिति हमें यह सोचने पर मजबूर करती है कि मानवता ने अपनी खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जो तरीके अपनाए हैं, वे न केवल विनाशकारी हैं बल्कि अस्थायी भी। ऐसे में यह स्पष्ट हो जाता है कि अब एक नए और स्थायी समाधान की आवश्यकता है, जो न केवल हमारी खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करे, बल्कि पर्यावरण की रक्षा भी करे।

ऊर्ध्वाधर खेती अथवा "वर्टिकल फार्मिंग" शब्द का प्रथम उपयोग 100 वर्ष से अधिक पहले गिल्बर्ट एलिस बेली की पुस्तक "वर्टिकल फार्मिंग" में किया गया था, जो मिट्टी की गुणवत्ता और पोषक तत्वों की घनत्व पर ध्यान केंद्रित करती थी। उस समय, यह अवधारणा खेतों की पारंपरिक पद्धतियों पर आधारित थी। आज की आधुनिक परिभाषा में, वर्टिकल फार्मिंग का मतलब है पौधों को ऊर्ध्वाधर रूप से एक के ऊपर एक परतों में उगाना। यह तकनीक शहरी क्षेत्रों में विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो गई है, जहाँ भूमि की कमी और बढ़ती जनसंख्या के कारण खाद्य उत्पादन की आवश्यकता बढ़ी है। वर्टिकल फार्मिंग का उपयोग छोटे पैमाने पर घरेलू उपयोग के लिए किया जा सकता है, जैसे कि बागवानी उत्साही लोग के लिए, जो अपने घर में ताजा सब्जियाँ उगाना चाहते हैं। दूसरी ओर, यह बड़े पैमाने पर वाणिज्यिक खेती के लिए भी उपयुक्त है, जैसे गगनचुंबी इमारतों या गोदामों में, जहाँ अत्याधुनिक तकनीकों का उपयोग किया जाता है। इस प्रकार, वर्टिकल फार्मिंग न केवल फसलों की पैदावार को बढ़ाने का एक नया तरीका है, बल्कि यह जल, ऊर्जा और अन्य संसाधनों का अधिक कुशल उपयोग भी सुनिश्चित करता है, जिससे एक सतत और पर्यावरण के अनुकूल खाद्य उत्पादन प्रणाली का निर्माण होता है। वर्टिकल फार्मिंग एक स्मार्ट अवधारणा है, जिसमें उत्पादन ऊर्ध्वाधर रूप से एक के ऊपर एक परतों में और ऊर्ध्वाधर झुकी हुई सतहों पर उगाया जाता है, जिन्हें हाइड्रोपोनिक सिस्टम कहा जाता है। उच्च तकनीक वाले वर्टिकल किसान प्राकृतिक धूप या एलईडी प्रकाश का उपयोग करते हैं, और वातावरण की आर्द्रता, पानी के स्तर, पोषक तत्वों और फसल कटाई के समय की निगरानी और समायोजन के लिए तकनीक का सहारा लेते हैं।

वर्टिकल और शहरी खेती की शुरुआत

दो दशक पूर्व, कोलंबिया विश्वविद्यालय के पारिस्थितिकीविद् डिक्सन डेस्पॉमीयर ने वर्टिकल और शहरी कृषि के विचार को बढ़ावा देना शुरू किया। उन्होंने मैनहट्टन की आबादी को भोजन प्रदान करने का समाधान खोजने के लिए अपने छात्रों को प्रेरित किया और गगनचुंबी इमारतों में खेती करने का विचार प्रस्तुत किया। छात्रों ने छतों पर बागवानी को आजमाया, लेकिन पाया कि इस तरीके से मैनहट्टन की केवल दो प्रतिशत मांग ही पूरी हो सकती है। नतीजों से निराश होकर, डेस्पॉमीयर ने खेती और शहर को मिलाकर इनडोर वर्टिकल खेती का नया विचार सुझाया। यह दृष्टिकोण "कंक्रीट जंगल" की परिभाषा में एक नया आयाम जोड़ता है। जबकि वास्तुकार केन यांग ने व्यक्तिगत और सामुदायिक उपयोग के लिए मिश्रित-प्रयोग गगनचुंबी इमारतें प्रस्तावित की थीं, डेस्पॉमीयर ने गगनचुंबी खेती को थोक और वितरण के लिए बढ़ावा दिया। 2009 में, इंगलैंड के पेंटन जू एनवायर्नमेंटल पार्क में वर्टिकल फार्मिंग का परीक्षण किया, जहां कर्मचारियों ने जानवरों के लिए भोजन उगाया और इसका विश्लेषण किया। तीन वर्ष बाद, सिंगापुर में एक कंपनी ने पहली व्यावसायिक वर्टिकल फार्म का संचालन शुरू किया, जो तीन मंजिला ऊंचाई की थी, और अब 500 से अधिक वर्टिकल फार्मिंग टावर बन चुके हैं। आज, 2013 में स्थापित वर्टिकल फार्मिंग एसोसिएशन इस तकनीक को आगे बढ़ाने के लिए काम कर रही है और अंतरराष्ट्रीय कार्यशालाओं और जानकारी सत्रों का आयोजन करती है। कई फार्म पुराने शिपिंग कंटेनरों, गगनचुंबी इमारतों, बंद फैक्ट्रियों और छोड़े गए गोदामों में स्थापित किए गए हैं। एयरोफार्म्स, जिसे फ़ास्ट कंपनी मैगज़ीन ने दुनिया की सबसे नवोन्मेषी कंपनियों में गिना है, ने यहां तक कि एक रात्रि क्लब को पौधों की खेती के स्थान में बदल दिया है।

वर्ष 2017 में, आईकीआ और अन्य निवेशकों ने एयरोफार्म्स में 40 मिलियन डॉलर का निवेश किया, जो अब दुबई में दुनिया का सबसे बड़ा वर्टिकल फार्म बना चुके हैं। हालांकि कुछ लोग मानते हैं कि शहर में खेती महंगी है, विशेषज्ञों का मानना है कि शहरी फार्मों को शहरों के बाहरी हिस्सों में स्थापित किया जा सकता है, जहां यह अधिक किफायती होता है। दुबई इसका एक बड़ा उदाहरण है, क्योंकि यह शहर खाद्य आयात पर निर्भर करता है और इनडोर खेती उत्पादों को बाजार में लाने का अधिक टिकाऊ और किफायती तरीका हो सकता है। लागत की भरपाई परिवहन, पानी और ऊर्जा के कम खर्च से हो जाती है। उदाहरण के तौर पर न्यूयॉर्क का होल फूड्स मार्केट, जो स्टोर के ऊपर स्थित वर्टिकल फार्म में उगाए गए ताजे उत्पाद बेचता है। यह उपभोक्ताओं के लिए लागत-कुशल तरीके से ताजे उत्पाद तक पहुंचने का एक बेहतरीन उदाहरण है।

फ़ार्म्डहियर, एक वाणिज्यिक वर्टिकल फार्म, वर्तमान में शिकागो क्षेत्र के सभी होल फूड्स मार्केट स्टोर्स को आपूर्ति करता है।

ऊर्ध्वाधर खेती का दृश्य

भारत में ऊर्ध्वाधर खेती (वर्टिकल फार्मिंग) का उदय

यह तकनीक भारत में तेजी से लोकप्रिय हो रही है क्योंकि यह पारंपरिक कृषि पद्धतियों की चुनौतियों, जैसे सीमित भूमि उपलब्धता, जल संकट और जलवायु परिवर्तन, का समाधान प्रदान करने की क्षमता रखती है। भारत में वर्टिकल फार्मिंग की अवधारणा नई नहीं है; इसका इतिहास 1960 के दशक तक जाता है, जब भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन ने अंतरिक्ष अभियानों के लिए वर्टिकल फार्मिंग तकनीक विकसित करना शुरू किया था। हालांकि, 2010 के दशक तक निजी कंपनियों और स्टार्टअप्स ने भारत में वर्टिकल फार्मिंग के व्यावसायिक संभावनाओं का अन्वेषण शुरू नहीं किया था। भारत में वर्टिकल फार्मिंग के अग्रदूतों में से एक बेंगलुरु स्थित कंपनी एग्रीनर्चर है। 2014 में स्थापित इस कंपनी ने शहर में 40,000 वर्ग फीट का वर्टिकल फार्म स्थापित किया है, जो प्रति माह 10,000 किलोग्राम से अधिक फसलें उत्पादन कर सकता है। कंपनी हाइड्रोपोनिक्स, एरोपोनिक्स और एलईडी लाइटिंग का संयोजन प्रयोग कर लेट्यूस, पालक और जड़ी-बूटियों जैसी फसलें उगाती है। भारत में वर्टिकल फार्मिंग उद्योग का एक और प्रमुख उदारण मुंबई स्थित कंपनी फार्म 2 किचन है। 2015 में स्थापित इस कंपनी ने मुंबई में 10,000 वर्ग फीट का वर्टिकल फार्म तैयार किया है, जो प्रति माह 12,000 किलोग्राम से अधिक फसलें उत्पादन करता है। कंपनी एक क्लोज्ड-लूप सिस्टम का उपयोग करती है जो पानी और पोषक तत्वों को पुनःचक्रित करता है, जिससे यह पारंपरिक कृषि विधियों की तुलना में अधिक टिकाऊ बनती है। भारत सरकार ने भी देश की कृषि संबंधी चुनौतियों के समाधान के रूप में वर्टिकल फार्मिंग को बढ़ावा देने में रुचि दिखाई है। 2018 में, नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय ने 2024 तक देशभर में 100 वर्टिकल फार्म स्थापित करने की योजना की घोषणा की। इसके अलावा सरकार ने प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (PMKSY) और अटल नवाचार मिशन जैसी योजनाओं के माध्यम से वर्टिकल फार्मिंग में लगे उद्यमों को वित्तीय प्रोत्साहन भी प्रदान किए हैं।

बंद कमरों में ऊर्ध्वाधर खेती

वर्टिकल फार्मिंग के प्रकार

वर्टिकल फार्मिंग आधुनिक कृषि का एक उन्नत तरीका है, जो मौसमी स्थितियों पर निर्भरता को कम करता है और अधिक स्थायी, पोषक तत्वों से भरपूर उत्पादन की सुविधा प्रदान करता है। पारंपरिक खेती मौसमी बदलावों पर निर्भर करती है, जिससे फसल उत्पादन में अस्थिरता आ सकती है और कई सब्जियों को केवल विशेष मौसम में ही उगाया जा सकता है। इसके विपरीत, वर्टिकल फार्मिंग में रोशनी, तापमान और पानी की आवश्यकताओं को अनुकूलित किया जा सकता है, जिससे फसल उत्पादन दर, उत्पाद की गुणवत्ता, और पोषण तत्वों का स्तर बेहतर हो सके। इसमें कई बार मिट्टी का उपयोग नहीं होता, बल्कि पौधों को झिल्लियों या अन्य माध्यमों में उगाया जाता है।

ग्रीनहाउस: ग्रीनहाउस तकनीक पारंपरिक रूप से कई जगहों पर उपयोग की जाती रही है, लेकिन अब इसे वर्टिकल फार्मिंग के लिए भी अनुकूलित किया गया है। गगनचुंबी इमारतों के समान, ग्रीनहाउस भी इनडोर वर्टिकल फार्म के लिए स्थान प्रदान कर सकते हैं। इनमें नियंत्रित तापमान, प्रकाश और आर्द्रता होती है, जिससे इनडोर खेती में अधिक गुणवत्ता वाली फसलें प्राप्त की जा सकती हैं।

फोल्केवाल: फोल्केवाल एक स्वीडिश अवधारणा है, जो दुनिया भर में तेजी से लोकप्रिय हो रही है। इसमें भवन की दीवारों पर पौधों को उगाकर ग्रेवाटर (धुले या बचे हुए घरेलू पानी) को शुद्ध किया जाता है। यह न केवल जल शुद्धिकरण में सहायक है, बल्कि इससे शहरों में हरे-भरे स्थान भी बनाए जा सकते हैं। इस पद्धति में दीवारों पर उगाए गए पौधों को ग्रेवाटर के माध्यम से सिंचित किया जाता है, जिससे जल संरक्षण के साथ-साथ पौधों को पर्याप्त पोषण भी मिलता है।

एक्वापोनिक्स: एक्वापोनिक्स एक उन्नत वर्टिकल फार्मिंग प्रणाली है, जिसमें पौधों की खेती और जलीय कृषि को एकीकृत किया जाता है। इस पद्धति में मछलियों के पानी से पौधों को खाद मिलती है, जबकि पौधे बदले में पानी को मछलियों के लिए शुद्ध करते हैं। यह तकनीक एक स्थायी प्रणाली के रूप में काम करती है, जिसमें मछलियों का कचरा प्राकृतिक रूप से पौधों के लिए उपयोगी पोषक तत्वों में बदल जाता है। इस विधि का उपयोग व्यावसायिक रूप से बड़े पैमाने पर किया जाता है और यह पौधों व मछलियों दोनों के लिए लाभकारी साबित होती है।

हाइड्रोपोनिक्स: हाइड्रोपोनिक्स वर्टिकल फार्मिंग की सबसे लोकप्रिय विधियों में से एक है, जिसमें पौधों को पोषक तत्वों से समृद्ध पानी में उगाया जाता है। मिट्टी के बजाय, पौधों की जड़ें एक स्पंज जैसे पदार्थ में रखी जाती हैं, जो पोषक तत्वों से भरपूर पानी में भीगी रहती हैं। इस प्रणाली में ऊर्जा-कुशल एलईडी लाइट्स का उपयोग किया जाता है, जो प्राकृतिक सूर्य की रोशनी का विकल्प प्रदान करती हैं। हाइड्रोपोनिक्स न केवल फसल के विकास में सुधार करता है, बल्कि उत्पादन को भी ऊर्जा दक्षता और जल संरक्षण के साथ बढ़ाता है।

कृषि रोबोट: वर्टिकल फार्मिंग में कृषि रोबोट का इस्तेमाल तेजी से बढ़ रहा है। ये रोबोट तापमान, आर्द्रता, वायु गुणवत्ता, और पोषक तत्वों का स्तर माप सकते हैं। साथ ही, ये पौधों का बीजारोपण, निरीक्षण और

कटाई जैसी गतिविधियां भी पूरी कर सकते हैं। नवीनतम मॉडल, जैसे कि आयरन ऑक्स रोबोट, बेहद सटीकता के साथ सभी चरणों का पालन करते हैं, जिससे मानव श्रमिकों पर निर्भरता कम होती है और उत्पादन दर में सुधार होता है।

एरोपोनिक्स: एरोपोनिक्स हाइड्रोपोनिक्स का एक उन्नत रूप है, जिसमें पौधों की जड़ें हवा में स्वतंत्र रूप से लटकती हैं और उन पर पोषक तत्वों का स्प्रे किया जाता है। इस पद्धति में पौधों को सीधे पोषक तत्व प्रदान किए जाते हैं, जिससे वे तेजी से बढ़ते हैं और कम जल का उपयोग होता है। एरोपोनिक्स में पौधों को नियंत्रित वातावरण में रखा जाता है, जिससे उन्हें पोषक तत्वों का अधिकतम लाभ मिलता है।

वर्टिकल फार्मिंग के लाभ

वर्टिकल फार्मिंग के कई पर्यावरणीय लाभ हैं, जो समाज और पर्यावरण दोनों के समक्ष उपस्थित कई समस्याओं का समाधान कर सकते हैं:

1. प्राकृतिक भूमि, वनस्पति और जीव-जंतु की पुनर्प्राप्ति

वर्टिकल खेती की तकनीक भूमि और स्थान का प्रभावी उपयोग करती है, जिससे पेड़-पौधों और भूमि के लिए अधिक स्थान छोड़ती है, ताकि यह अपनी प्राकृतिक स्थिति में वापस लौट सके। इससे वनों की कटाई को रोका जा सकता है और CO2 उत्सर्जन को संतुलित किया जा सकता है।

हाइड्रोपोनिक खेती भी फसल को ऑर्गेनिक बनाती है, जिसका मतलब है कि रासायनिक पदार्थ मिट्टी और उसमें रहने वाले जीवों को नुकसान नहीं पहुंचाते हैं। खेती के कारण जो प्राकृतिक वातावरण नष्ट हो गया है, उसे पुनर्स्थापित करना पारंपरिक खेती के प्रतिकूल प्रभावों को दूर कर सकता है, जैसे कि छोटे जानवरों की सामूहिक विलुप्ति।

2. स्वास्थ्य और सुरक्षा के लिए कम जोखिम

वर्टिकल फार्मिंग का अभ्यास मानवों के लिए स्वास्थ्य और सुरक्षा के जोखिम को कम करता है। इन विविध तकनीकों के उपयोग से वर्टिकल फार्मिंग खेती की आधुनिक आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम हो रही है। यह भविष्य में भोजन की बढ़ती मांगों को पूरा करने, जल और ऊर्जा के कुशल उपयोग में सहायक है, और अधिक स्थायी और पोषक तत्वों से भरपूर कृषि समाधान प्रदान करती है। खेती किसानों को कृषि में उपयोग होने वाले रासायनिक पदार्थों, सूक्ष्मजीवों, चोटों, और क्षेत्र के आधार पर, खतरनाक वन्यजीवों के संपर्क में लाती है। यदि वर्टिकल फार्मिंग को बहुउपयोगी भवनों में एकीकृत किया जाता है, तो यह हवा को शुद्ध करता है और इसकी गुणवत्ता में सुधार करता है, जिससे उस भवन का उपयोग करने वाले समुदाय के लिए स्वास्थ्य लाभ प्राप्त होते हैं। तकनीकी उन्नति के साथ, स्मार्ट कृषि रोबोट मानव श्रम को प्रतिस्थापित कर सकते हैं और साथ ही कार्यक्षमता बढ़ा सकते हैं।

घरेलू वर्टिकल फार्मिंग

यदि आप पहले से ही एक शहरी क्षेत्र में रहते हैं, आपके पास भौतिक बाग़ या अलॉटमेंट नहीं है, लेकिन आप जितना संभव हो सके अपने हरे सब्जियों का उत्पादन करना चाहते हैं, तो आप एक इनडोर वर्टिकल एवरग्रीन फार्म बना सकते हैं। रिटेल दिग्गज पहले ही वर्टिकल फार्मिंग के रुझान पर कूद चुके हैं और शौकिया बागवानों के लिए सस्ती DIY किट प्रदान करते हैं, जो मौसम की परवाह किए बिना पौधों को उगाने में रुचि रखते हैं। यदि आप अपने घर में वर्टिकल फार्मिंग करने का प्रयास करना चाहते हैं, तो इनडोर हाइड्रोपोनिक बागवानी किट बाज़ार में उपलब्ध हैं, जिसमें पौधों की खेती के लिए यूनिट और एल ई डी लाइट्स होती हैं। फूलों या खाद्य पौधों को उगाने के लिए वर्टिकल वॉल प्लांटर्स उपलब्ध हैं, जिन्हें आसानी से दीवारों पर जोड़ा जा सकता है, जिससे किसी भी इनडोर स्थान को बाग़ के रूप में उपयोग किया जा सकता है। यदि आप एक नए व्यवसाय के प्रयास की तलाश कर रहे हैं और एक शहरी क्षेत्र में अपना वर्टिकल फार्म खोलने की योजना बना रहे हैं, तो पहले से कोशिश करके असफल होने वाले लोगों से कठिन सबक सीखें। यह सुनिश्चित करें कि आप अपने उपभोक्ता को परिभाषित करें, उनके निकटतम स्थान का चयन करें, अपने उत्पाद की कीमत गुणवत्ता के अनुसार तय करें, और अपने श्रम और तकनीकी निवेश की विस्तृत योजना बनाएं।

निष्कर्ष

वर्टिकल फार्मिंग में बढ़ती रुचि कृषि के भविष्य का संकेत दे सकती है। यह नवोन्मेषी दृष्टिकोण हमारे ग्रह के संसाधनों पर दबाव को कम कर सकता है। वर्टिकल फार्मिंग और भी आगे बढ़ सकती है और शहद और मछली का उत्पादन कर सकती है; यह शहरी जीवन को कृषि के साथ मिलाने के लिए सामाजिक उद्यमियों के लिए एक उत्कृष्ट अवसर है। हम उस तरह से खेती नहीं कर सकते जिस तरह से हम कर रहे थे, जानबूझकर खाद्य उत्पादन के लिए एक पारिस्थितिकी तंत्र को नष्ट कर रहे हैं, लेकिन शहरी खेती के साथ, हम ग्रह को सतत रूप से खिलाने की प्रक्रिया जारी रख सकते हैं। राजनीतिक तनावों के कारण निर्यात और आयात प्रभावित हो रहे हैं, इसलिए सभी चीजों को स्थानीय स्तर पर उगाना दूसरे देशों के उत्पादों पर निर्भरता का समाधान है। जैसा कि डेस्पोमियर ने सबसे अच्छा कहा है, "खाद्य सुरक्षा, आपूर्ति, संप्रभुता, स्थिरता, ये सभी महत्वपूर्ण हैं, और वर्टिकल फार्मिंग इन सभी का समाधान करती है।" प्रौद्योगिकी में उन्नति और आगे के शोध के साथ, वर्टिकल फार्म और नियंत्रित पर्यावरण सटीक कृषि लागतों को कम कर सकती है, और अधिक से अधिक उत्पादों को घरेलू स्तर पर और स्थानीय थोक बाजारों के लिए उगाने में मदद कर सकती है, जो पारंपरिक कृषि के लिए एक व्यावहारिक विकल्प प्रदान करती है।

13. मृदा स्वास्थ्य एवं सतत कृषि के लिए बायोचार का महत्व

प्रभात कुमार[1], शिव शंकर प्रसाद[2], अभय कुमार[1], रामाशीष कुमार[1] एवं सोमेश कुमार[1]

[1]भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र, मुजफ्फरपुर, बिहार, [2]डॉ. राजेंद्र प्रसाद केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर, बिहार

बायोचार एक प्रकार का चारकोल (कोयला) होता है जो जैविक पदार्थों से पाइरोलिसिस की प्रक्रिया के माध्यम से प्राप्त किया जाता है। पाइरोलिसिस में बायोमास (जैसे लकड़ी की छीलन, कृषि अपशिष्ट या गोबर) को कम ऑक्सीजन वाले वातावरण में गर्म किया जाता है। इस प्रक्रिया के दौरान जैविक पदार्थ एक स्थायी, कार्बन-समृद्ध रूप में विघटित हो जाता है, जिससे एक अत्यधिक छिद्रयुक्त पदार्थ बनता है जिसकी सतह क्षेत्र बहुत अधिक होती है। बायोचार का इतिहास हजारों वर्ष पुराना है। अमेज़न बेसिन जैसी प्राचीन सभ्यताओं ने बायोचार का उपयोग मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने और कृषि उत्पादकता सुधारने के लिए एक मिट्टी-सुधारक के रूप में किया था। उन प्रारंभिक कृषकों ने पाया कि मिट्टी में चारकोल मिलाने से न केवल पोषक तत्वों को रोकने की क्षमता बढ़ती है, बल्कि मिट्टी की संरचना और सूक्ष्मजीव गतिविधि भी बेहतर होती है। हाल के दशकों में बायोचार के प्रति रुचि तेजी से बढ़ी है, क्योंकि यह कृषि, पर्यावरणीय स्थिरता और जलवायु परिवर्तन शमन के लिए संभावित लाभ प्रदान करता है। अनुसंधानों से यह सिद्ध हुआ है कि बायोचार मिट्टी की उर्वरता को बेहतर बना सकता है, फसल उत्पादन बढ़ा सकता है, जल और पोषक तत्वों को संचित रख सकता है और ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को कम कर सकता है। आधुनिक बायोचार आंदोलन 21वीं सदी की शुरुआत में गति पकड़ने लगा, जब वैज्ञानिकों, पर्यावरणविदों और कृषिविदों ने इसे एक सतत मिट्टी प्रबंधन पद्धति के रूप में अपनाने की अनुसंशा की। आज, बायोचार को विश्व के कई क्षेत्रों में एक आशाजनक समाधान के रूप में अध्ययन और कार्यान्वित किया जा रहा है

बायोचार का उत्पादन और गुणधर्म

बायोचार का उत्पादन जैविक पदार्थों—जैसे कृषि अवशेष, वानिकी अपशिष्ट या बायोमास फसलें—की पाइरोलिसिस प्रक्रिया द्वारा किया जाता है, जिसमें कम ऑक्सीजन वाले वातावरण में इन्हें गर्म किया जाता है। पाइरोलिसिस की यह प्रक्रिया सामान्यतः 350^{0}C से 700^{0}Cके तापमान पर की जाती है, जो प्रयुक्त फीडस्टॉक और वांछित बायोचार गुणों पर निर्भर करता है। इस प्रक्रिया के दौरान वाष्पशील कार्बनिक यौगिक हट जाते हैं और एक कार्बन-समृद्ध अवशेष बचता है, जिसे बायोचार कहा जाता है। बायोचार उत्पादन के कई तरीके होते हैं, जैसे कि किल्न पाइरोलिसिस, रिटॉर्ट प्रणाली, गैसीफिकेशन और स्लो पाइरोलिसिस। इनमें से स्लो पाइरोलिसिस सबसे अधिक उपयोग की जाने वाली विधि है, क्योंकि इससे वांछनीय गुणों वाला उच्च गुणवत्ता वाला बायोचार प्राप्त किया जा सकता है। बायोचार के गुणधर्म विभिन्न कारकों, जैसे फीडस्टॉक की संरचना, पाइरोलिसिस की स्थितियाँ और बाद की प्रक्रिया पर निर्भर करते हैं। फिर भी, बायोचार के कुछ सामान्य गुण निम्नलिखित होते हैं:

कार्बन सामग्री: बायोचार में सामान्यतः सूखे वजन के अनुसार 60% से 90% तक कार्बन की मात्रा होती है। यह उच्च कार्बन सामग्री बायोचार को दीर्घकालिक कार्बन संचय में योगदान देने वाला बनाती है।

छिद्रयुक्तता: बायोचार अत्यधिक छिद्रयुक्त होता है, जिसमें जटिल रंध्रों और चैनलों का नेटवर्क होता है, जो जैव-रासायनिक प्रतिक्रियाओं और पोषक तत्वों के अवशोषण के लिए एक बड़ा सतह क्षेत्र प्रदान करता है। इसकी यह छिद्रयुक्तता जल धारण क्षमता, पोषक तत्वों की पकड़ और मिट्टी में सूक्ष्मजीव गतिविधियों को प्रभावित करती है।

सतह क्षेत्र: बायोचार की छिद्रयुक्त संरचना इसे अत्यधिक सतह क्षेत्र प्रदान करती है, जो प्रति ग्राम कई दसकों से सैकड़ों वर्ग मीटर तक हो सकता है। यह उच्च सतह क्षेत्र मिट्टी में जल, पोषक तत्वों और जैविक अणुओं को अवशोषित करने की इसकी क्षमता को बढ़ाता है, जिससे मिट्टी की उर्वरता और पोषक तत्वों की उपलब्धता बेहतर होती है।

पीएच मान (अम्लीयता एवं क्षारीयता): बायोचार का पीएच इसकी फीडस्टॉक और पाइरोलिसिस की स्थितियों पर निर्भर करता है। सामान्यतः बायोचार का पीएच तटस्थ से क्षारीय होता है, जो अम्लीय मिट्टियों को संतुलित करता है और समय के साथ मिट्टी की पीएच स्थिति में सुधार लाता है।

कैटायन विनिमय क्षमता: बायोचार में उल्लेखनीय कैटायन विनिमय क्षमता होती है, जो इसे पोटैशियम, कैल्शियम और मैग्नीशियम जैसे धनायन को अवशोषित और मुक्त करने में सक्षम बनाती है। यह गुण मिट्टी में पोषक तत्वों के संरक्षण और उपलब्धता को बेहतर बनाकर पौधों की वृद्धि और उत्पादकता को बढ़ावा देता है।

स्थिरता: बायोचार मिट्टी में विघटन और सूक्ष्मजीवों द्वारा अपघटन के प्रति प्रतिरोधी होता है। इसकी यह स्थिरता लंबे समय तक कार्बन संचय और मिट्टी सुधार के लाभ सुनिश्चित करती है, जिससे यह जलवायु परिवर्तन शमन और सतत कृषि के लिए एक महत्वपूर्ण साधन बन जाता है। समग्र रूप से, बायोचार एक बहुउपयोगी मिट्टी संशोधन है, जिसमें ऐसे अनूठे गुण होते हैं जो मिट्टी के स्वास्थ्य को सुधारने, फसल उत्पादकता को बढ़ाने और कृषि से जुड़ी पर्यावरणीय चुनौतियों को कम करने में सहायक होते हैं।

बायोचार और मिट्टी का स्वास्थ्य

बायोचार विभिन्न प्रक्रियाओं और अंतःक्रियाओं के माध्यम से मिट्टी के स्वास्थ्य को सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

मिट्टी की संरचना में सुधार: बायोचार की छिद्रयुक्त संरचना मिट्टी में वायु संचरण, जल का रिसाव और जल निकासी को बेहतर बनाती है। यह मिट्टी की छिद्रयुक्तता और संघटन को बढ़ाकर उसकी संरचना को सुधारता है,

जिससे सघनता कम होती है और जड़ों की वृद्धि को प्रोत्साहन मिलता है। यह बेहतर संरचना जड़ों की गहराई तक पहुँच, पोषक तत्वों का अवशोषण और संपूर्ण मिट्टी स्वास्थ्य को बढ़ावा देती है।

जल धारण क्षमता में वृद्धि: बायोचार की उच्च छिद्रयुक्तता और बड़ी सतह क्षेत्र जल को अवशोषित और संचित करने में सक्षम होती है, जिससे सतही जल बहाव कम होता है और मिट्टी में नमी बनी रहती है। यह गुण विशेष रूप से रेतीली या कम जैविक पदार्थ वाली मिट्टियों में लाभकारी होता है, जहाँ जल धारण क्षमता सीमित होती है। पौधों को अधिक जल उपलब्ध कराकर, बायोचार सूखा सहनशीलता को बढ़ाता है और सिंचाई की आवश्यकता को कम करता है।

पोषक तत्वों की पकड़ और उपलब्धता में सुधार: बायोचार की उच्च कैटायन विनिमय क्षमता इसे नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटैशियम और सूक्ष्म पोषक तत्वों को अवशोषित और संचित करने में सक्षम बनाती है। इससे पौधों को अधिक पोषक तत्व उपलब्ध होते हैं और पोषक तत्व उपयोग दक्षता में वृद्धि होती है, जिससे फसल की उत्पादकता बढ़ती है और उर्वरकों की आवश्यकता कम होती है।

पीएच मान का संतुलन: बायोचार का क्षारीय स्वभाव अम्लीय मिट्टियों के पीएच को संतुलित करने में सहायक होता है, जिससे मिट्टी का पीएच धीरे-धीरे स्थिर और अनुकूल बनता है। यह उन मिट्टियों में विशेष रूप से उपयोगी होता है जहाँ कम पीएच के कारण पोषक तत्वों की उपलब्धता और सूक्ष्मजीव गतिविधियाँ सीमित होती हैं। पीएच संतुलन द्वारा बायोचार पौधों की वृद्धि और सूक्ष्मजीवों की सक्रियता के लिए बेहतर वातावरण बनाता है, जिससे मिट्टी का स्वास्थ्य और उत्पादकता दोनों में सुधार होता है।

सूक्ष्मजीव गतिविधि को बढ़ावा: बायोचार लाभकारी मिट्टी सूक्ष्मजीवों जैसे कि बैक्टीरिया, कवक और मायकोराइजा के लिए आश्रय और खाद पदार्थ प्रदान करता है। ये सूक्ष्मजीव बायोचार के छिद्रों और सतह पर उपनिवेश बनाते हैं, पौधों के साथ सहजीवी संबंध बनाते हैं और पोषक तत्वों का चक्रण, जैविक पदार्थों का अपघटन और मिट्टी में जैविक कार्बन संचय को बढ़ावा देते हैं।

भविष्य की दिशा और अनुसंधान की आवश्यकताएँ

बायोचार अनुसंधान और विकास का भविष्य पर्यावरण और कृषि से जुड़ी गंभीर चुनौतियों के समाधान हेतु अत्यधिक संभावनाएँ रखता है।

दीर्घकालिक अध्ययन: मृदा स्वास्थ्य, फसल उपज और पर्यावरणीय प्रभावों पर बायोचार के दीर्घकालिक प्रभावों का मूल्यांकन करने के लिए दीर्घकालिक फील्ड परीक्षण और निगरानी अध्ययन अत्यंत आवश्यक हैं। अनुसंधान को यह समझने पर केंद्रित होना चाहिए कि विभिन्न कृषि पारिस्थितिक तंत्रों और पर्यावरणीय परिस्थितियों में समय के साथ बायोचार की स्थायित्व, स्थिरता और मृदा जीवों के साथ उसकी अंतःक्रियाएँ कैसी रहती हैं।

उत्पादन प्रक्रियाओं का अनुकूलन: अनुसंधान का उद्देश्य बायोचार उत्पादन की दक्षता, उत्पादकता और गुणवत्ता को बेहतर बनाना होना चाहिए, साथ ही ऊर्जा खपत, उत्सर्जन और पर्यावरणीय प्रभावों को न्यूनतम करना भी ज़रूरी है। नवीन पायरोलिसिस प्रौद्योगिकियों, कच्चे माल की पूर्व-प्रसंस्करण विधियों, और पश्च-उपचार तकनीकों का विकास बायोचार के गुणों को सुधारने और उत्पादन लागत को घटाने में सहायक होगा, जिससे बायोचार अधिक किफायती और व्यावसायिक रूप से व्यावहार्य बन सके।

अनुकूलित बायोचार उत्पाद: विशिष्ट मृदा प्रकारों, जलवायु परिस्थितियों और फसल प्रणालियों में बायोचार के प्रदर्शन पर उसके गुणों जैसे कि कच्चे माल का प्रकार, पायरोलिसिस तापमान, और कण आकार के प्रभावों का अध्ययन करना अनुकूलित बायोचार उत्पादों के विकास के लिए आवश्यक है। अनुसंधान को यह पता लगाना चाहिए कि बायोचार की विशेषताएँ पोषक तत्वों की धारण क्षमता, जल गतिकी, सूक्ष्मजीवीय गतिविधियों, और पौधों-मृदा के अंतर्संबंधों को कैसे प्रभावित करती हैं, ताकि लक्षित कृषि और पर्यावरणीय परिणामों हेतु उपयुक्त बायोचार सूत्र विकसित किए जा सकें।

सतत कृषि पद्धतियों के साथ एकीकरण: बायोचार अनुप्रयोग और अन्य सतत कृषि प्रथाओं जैसे संरक्षण कृषि, कृषि वानिकी, और जैविक खेती के बीच सहयोग और संभावित टकरावों का अध्ययन करना आवश्यक है ताकि ऐसे एकीकृत मृदा प्रबंधन रणनीतियाँ तैयार की जा सकें जो पारिस्थितिक तंत्र सेवाओं और कृषि प्रणालियों की लचीलापन को अधिकतम करें। अनुसंधान को यह भी तलाशना चाहिए कि कैसे बायोचार को आवरण फसल (कवर क्रॉपिंग), फसल चक्र परिवर्तन, और सटीक पोषक तत्व प्रबंधन के साथ मिलाकर मृदा स्वास्थ्य सुधारने, जलवायु परिवर्तन को कम करने और कृषि की सतत तीव्रता को बढ़ावा देने के लिए प्रयोग किया जा सकता है।

निष्कर्ष

सतत कृषि में मृदा स्वास्थ्य सुधारने और संसाधनों के प्रभावी उपयोग को बढ़ावा देने के लिए बायोचार का अनुप्रयोग अत्यंत संभावनाशील है। मृदा उत्पादकता, जल धारण क्षमता, पोषक चक्र, और कार्बन स्थिरीकरण पर इसके विशिष्ट गुणों और लाभकारी प्रभावों के माध्यम से, बायोचार पर्यावरणीय और कृषि से जुड़ी गंभीर चुनौतियों के लिए बहुआयामी समाधान प्रदान करता है। बायोचार को मृदा प्रबंधन प्रथाओं में शामिल करके किसान मृदा संरचना में सुधार कर सकते हैं, फसल उत्पादकता बढ़ा सकते हैं, पोषक तत्वों के रिसाव को कम कर सकते हैं, और ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को घटा सकते हैं, जिससे कृषि प्रणालियों को अधिक लचीला और सतत बनाया जा सकता है। समग्र रूप से, बायोचार मृदा स्वास्थ्य को बढ़ावा देने, जलवायु परिवर्तन को कम करने और सतत प्रबंधन तकनीकों को आगे बढ़ाने के लिए एक आशाजनक रणनीति प्रस्तुत करता है। सहयोगात्मक अनुसंधान, नवाचार, और नीतिगत प्रयासों के माध्यम से बायोचार के लाभों का उपयोग किया जा सकता है और इसकी चुनौतियों का समाधान किया जा सकता है, जिससे ऐसे कृषि पारितंत्र विकसित हो सकें जो खाद्य सुरक्षा, पर्यावरणीय स्थिरता, और वर्तमान एवं भविष्य की पीढ़ियों के कल्याण को सुनिश्चित करें।

14. जलवायु परिवर्तन का कृषि कीटों पर दुष्प्रभाव

अंश राज, इप्सिता सामल एवं भाग्या विजयन

भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र, मुजफ्फरपुर, बिहार

मानव इतिहास में, जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ दैनिक जीवन, संस्कृति, तकनीक, विज्ञान, अर्थव्यवस्था और कृषि उत्पादन में कई बदलाव हुए हैं। कृषि उत्पादन में भी कई बड़े बदलाव हुए हैं, कृषि क्रांतियां जो सभ्यता के विकास, तकनीक और सामान्य मानव उन्नति से प्रभावित हुई हैं। हालांकि, पिछले 100 वर्षों में असाधारण जनसंख्या वृद्धि के कई अवांछनीय परिणाम हुए हैं, जो खाद्य आपूर्ति की सुरक्षा को प्रभावित करते हैं। दुनिया की बढ़ती आबादी के लिए फसल उत्पादन की मांग बढ़ रही है और 2050 तक, उस तरह की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए वैश्विक कृषि उत्पादन को दोगुना करने की आवश्यकता होगी। खाद्य सुरक्षा के लिए, कई अध्ययनों ने सिफारिश की है कि फसल उत्पादन के लिए अधिक भूमि की सतह को साफ करने के बजाय फसल की पैदावार बढ़ाना सबसे टिकाऊ तरीका है। फसल उत्पादन के संबंध में, वर्षा के पैटर्न में बदलाव संभावित रूप से तापमान वृद्धि से अधिक महत्वपूर्ण हो सकते हैं, खासकर उन क्षेत्रों में जहां शुष्क मौसम कृषि उत्पादन के लिए एक सीमित कारक हैं। प्रमुख जैविक कारकों में से एक कीट हैं, जो जलवायु परिवर्तन और मौसम की गड़बड़ी से भी प्रभावित होते हैं। तापमान वृद्धि सीधे कीटों के प्रजनन, अस्तित्व, प्रसार और जनसंख्या की गतिशीलता के साथ-साथ कीटों, पर्यावरण और प्राकृतिक दुश्मनों के बीच संबंधों को प्रभावित करती है। इस प्रकार, कीटों की उपस्थिति और प्रचुरता की निगरानी करना बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि उनके होने की स्थितियां तेज गति से बदल सकती हैं।

कीटों पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

वैश्विक जलवायु परिवर्तनों का कृषि और कृषि कीटों पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। कृषि फसलें और उनसे संबंधित कीट जलवायु परिवर्तन से प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होते हैं। प्रत्यक्ष प्रभाव कीटों के प्रजनन, विकास, अस्तित्व और फैलाव पर पड़ता है, जबकि अप्रत्यक्ष रूप से जलवायु परिवर्तन कीटों, उनके पर्यावरण और अन्य कीट प्रजातियों जैसे प्राकृतिक शत्रु, प्रतिस्पर्धी, वाहक और पारस्परिकवादियों के बीच संबंधों को प्रभावित करता है। कीट पॉइकिलोथर्मिक जीव हैं; उनके शरीर का तापमान पर्यावरण के तापमान पर निर्भर करता है। इस प्रकार, तापमान कीट व्यवहार, वितरण, विकास और प्रजनन को प्रभावित करने वाला सबसे महत्वपूर्ण पर्यावरणीय कारक है। इसलिए, यह बहुत संभावना है कि जलवायु परिवर्तन के मुख्य चालक कीटों की जनसंख्या की गतिशीलता को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित कर सकते है। बढ़ते तापमान और कार्बन-डाईऑक्साइड द्वारा डाले जाने वाले शारीरिक प्रभावों की जटिलता कृषि फसलों और कीटों के बीच परस्पर क्रिया को गहराई से प्रभावित कर सकती है। इसलिए, आने वाले वर्षों में जलवायु परिवर्तन के कारण किसानों को नई और तीव्र कीट समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। भौतिक और राजनीतिक सीमाओं के पार फसल कीटों का प्रसार खाद्य सुरक्षा के लिए खतरा है और यह सभी देशों और सभी क्षेत्रों के लिए एक वैश्विक समस्या है।

तापमान बढ़ने पर कीटों की प्रतिक्रिया

कीट की शरीर क्रिया तापमान में बदलाव के प्रति बहुत संवेदनशील होता है, और 10°C की वृद्धि के साथ उनकी चयापचय दर लगभग दोगुनी हो जाती है। इस संदर्भ में, कई शोधकर्ताओं ने दिखाया है कि बढ़ता तापमान कीटों की खपत, विकास और आवाजाही में तेजी लाता है, जो प्रजनन क्षमता, अस्तित्व, पीढ़ी के समय, जनसंख्या के आकार और भौगोलिक सीमा को प्रभावित करके जनसंख्या की गतिशीलता को प्रभावित कर सकता है। प्रजातियां जो बढ़ी हुई तापमान की स्थिति के अनुकूल और विकसित नहीं हो सकती हैं, उन्हें आम तौर पर अपनी आबादी को बनाए रखने में मुश्किल होती है, जबकि अन्य प्रजातियां तेजी से पनप सकती हैं और प्रजनन कर सकती हैं। तापमान चयापचय, कायापलट, गतिशीलता और मेजबान उपलब्धता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जो कीट आबादी और गतिशीलता में बदलाव की संभावना को निर्धारित करता है। कीटों के वितरण और व्यवहार को देखते हुए, यह अनुमान लगाया जा सकता है कि तापमान में वृद्धि शाकाहारीपन में वृद्धि के साथ जुड़ी होनी चाहिए, साथ ही कीट आबादी की वृद्धि दर में भी बदलाव होना चाहिए। इस प्रकार, उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में कीट आबादी में वर्तमान तापमान स्तर के कारण जलवायु वार्मिंग के परिणामस्वरूप वृद्धि दर में कमी का अनुभव होने का अनुमान है, जो पहले से ही कीट विकास और वृद्धि के लिए इष्टतम के करीब है, जबकि समशीतोष्ण क्षेत्रों में कीटों की वृद्धि दर में वृद्धि का अनुभव होने की उम्मीद है।

बदलती जलवायु में कीट प्रबंधन के लिए अनुकूलन और शमन रणनीतियाँ

1. जलवायु-प्रतिरोधी किस्मों का प्रजनन: जलवायु और अन्य पर्यावरणीय परिवर्तनों के प्रभावों को कम करने के लिए, अजैविक और जैविक तनावों के लिए बेहतर प्रतिरोध के लिए नई किस्मों का प्रजनन करना महत्वपूर्ण होगा। सर्दियों की देर से शुरुआत और/या कम अवधि को ध्यान में रखते हुए, कुछ रबी/ठंड के मौसम की फसलों के लिए बढ़ते मौसम में देरी और कमी की संभावना है। इसलिए हमें देर से रोपण के लिए उपयुक्त किस्मों के प्रजनन पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए और जो प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों और कीट और रोग की घटनाओं को सहन कर सकते हैं।

2. फसलों की बुआई की तिथियों में परिवर्तन: वैश्विक जलवायु परिवर्तन के कारण फसलों की बुआई की तिथियों में परिवर्तन होगा,

जिससे मेजबान-कीट समकालिकता में बदलाव आएगा। कीटों के दबाव को कम करने और उपज बढ़ाने के लिए इष्टतम बुआई तिथियों की सिफारिश करने के लिए प्रारंभिक, सामान्य और देर से बुआई की स्थितियों के तहत मेजबान पौधों की परस्पर क्रिया में परिवर्तन का पता लगाने की आवश्यकता है।

3. फसल कैलेंडर का पुनर्निर्धारण: फसल चक्र और रोपण तिथियों जैसी कुछ प्रभावी सांस्कृतिक प्रथाएँ बदलती जलवायु के साथ फसल कीटों को नियंत्रित करने में कम या अप्रभावी होंगी। इसलिए फसल के बदलते वातावरण के अनुसार फसल कैलेंडर बदलने की आवश्यकता है। फसल उत्पादकों को बदलती जलवायु के मद्देनजर कीटों की घटनाओं और फसल के नुकसान की सीमा में अनुमानित परिवर्तनों के अनुसार कीट प्रबंधन रणनीतियों को बदलना होगा।

4. फसल कीटों का जीआईएस आधारित जोखिम मानचित्रण: भौगोलिक सूचना प्रणाली (जीआईएस) कीटविज्ञानियों के लिए एक सक्षम तकनीक है, जो कीटों के प्रकोप को परिदृश्य की जैविक और भौतिक विशेषताओं से जोड़ने में मदद करती है, इसलिए इसका उपयोग क्षेत्र-व्यापी कीट प्रबंधन कार्यक्रमों में सबसे अच्छा किया जा सकता है। जलवायु परिवर्तन कीटों के विकास, घटनाओं और जनसंख्या गतिशीलता को कैसे प्रभावित करेंगे, इसका अध्ययन जीआईएस के माध्यम से कृषि-पारिस्थितिक हॉटस्पॉट और कीट जोखिम के भविष्य के क्षेत्रों के भौगोलिक वितरण में संभावित परिवर्तनों की प्रवृत्तियों की भविष्यवाणी और मानचित्रण करके किया जा सकता है।

5. कीटनाशकों की नई कार्य-प्रणाली की जांच: यह बताया गया है कि चूसने वाले कीटों को नियंत्रित करने के लिए नियोनिकोटिनोइड कीटनाशकों के प्रयोग से सैलिसिलिक एसिड से संबंधित पौधों की रक्षा प्रतिक्रियाएँ प्रेरित होती हैं जो पौधों की शक्ति और अजैविक तनाव सहनशीलता को बढ़ाती हैं, जो उनकी कीटनाशक क्रिया से स्वतंत्र होती हैं। इससे पौधों में तनाव सहनशीलता बढ़ाने में कीटनाशकों की भूमिका की जांच करने में अंतर्दृष्टि मिलती है। भविष्य में फसल कीट प्रबंधन में उपयोग के लिए ऐसे और यौगिकों की पहचान की जानी चाहिए।

आगे की नीतियां

हमें भविष्य के अनुसंधान की दिशा तय करने और जलवायु परिवर्तन व्यवस्थाओं के तहत कीट समस्याओं से निपटने के लिए नीतियां तैयार करने की आवश्यकता है। इनमें से कुछ हैं;

- प्राकृतिक शत्रुओं की तापमान सहनशीलता वाली प्रजातियाँ विकसित करना
- मौसम और कीट पूर्वानुमान मॉडल का विकास
- प्रारंभिक चेतावनी प्रणाली/निर्णय समर्थन प्रणाली विकसित करना
- जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के बारे में जागरूकता
- शमन और अनुकूलन उपायों को अपनाना
- जलवायु परिवर्तन और इसके प्रभावों के बारे में हितधारकों को संवेदनशील बनाना
- अनुकूलन क्षमता बढ़ाने के लिए किसानों की सहभागितापूर्ण शोध
- संसाधन संरक्षण प्रौद्योगिकियों को बढ़ावा देना

निष्कर्ष

वैश्विक स्तर पर विभिन्न कृषि-जलवायु क्षेत्रों में कीटों से होने वाली क्षति मुख्य रूप से तापमान, आर्द्रता और वर्षा जैसे अजैविक कारकों के अलग-अलग प्रभावों के कारण होती है। इससे फसल विविधता में संभावित परिवर्तनों और जलवायु परिवर्तन के कारण कीटों की बढ़ती घटनाओं के कारण उपज में होने वाले नुकसान में वृद्धि होती है। फसल पौधों, कीटों और उनके प्राकृतिक शत्रुओं में अजैविक तनाव प्रतिक्रियाओं को समझना कृषि अनुसंधान में एक महत्वपूर्ण और चुनौतीपूर्ण विषय है। गंभीर कीटों की आबादी में परिवर्तन के माध्यम से फसल उत्पादन पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों पर सावधानीपूर्वक ध्यान देने की आवश्यकता है, ताकि भविष्य के कीट प्रबंधन कार्यक्रमों के लिए अनुकूलन और शमन रणनीतियों की योजना बनाई जा सके और उन्हें तैयार किया जा सके।

15. तुड़ाई उपरांत लीची के फलों में जैव रासायनिक परिवर्तन

संजन कुमार भारती, इप्सिता सामल, अंकित कुमार, भाग्या विजयन एवं उपज्ञा साह
भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र, मुजफ्फरपुर, बिहार

लीची के फल अपने स्वाद, अर्ध-पारदर्शी सफेद गूदा (एरिल) और आकर्षक लाल छिलके के लिए विश्व बाजार में प्रसिद्ध हैं। यह एक उप्पोषण कटिबंधीय फल है जो फलों की तुड़ाई के बाद बेहद जल्दी खराब होने लगता हैं और, परिणामस्वरूप, उनका जीवनकाल छोटा होता है जो बाजार में उनकी बिक्री और संभावित मांग वृद्धि को बाधित करता है है। तुड़ाई के बाद फल भंडारण के दौरान विभिन्न जैव रासायनिक परिवर्तनों से गुजरता है। लीची के फलों में तुड़ाई के बाद तेजी से पेरिकारप ब्राउनिंग, पोषण गुणवत्ता की हानि और माइक्रोबियल क्षय होने लगता है। भंडारण के दौरान होने वाले एंजाइमेटिक और जैव रासायनिक परिवर्तनों को समझना प्रभावी संरक्षण रणनीतियों को विकसित करने के लिए महत्वपूर्ण है।

लीची की जैव रासायनिक संरचना

लीची में शर्करा, कार्बनिक अम्ल, फेनोलिक यौगिक और विटामिन, विशेष रूप से विटामिन सी प्रचुर मात्रा में होते हैं। ये घटक इसके संवेदी और पोषण संबंधी गुणों में योगदान करते हैं। हालाँकि, फल की नाजुक जैव रासायनिक संरचना इसे खराब होने के लिए अतिसंवेदनशील बनाती है। एंजाइमेटिक गतिविधि और पर्यावरणीय कारकों द्वारा संचालित फसल के बाद के परिवर्तन, फल की गुणवत्ता और विपणन क्षमता से समझौता कर सकते हैं।

तुड़ाई के बाद भंडारण के दौरान एंजाइमेटिक गतिविधि

लीची की तुड़ाई के बाद की शारीरिक क्रिया में एंजाइमेटिक प्रतिक्रियाएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। गुणवत्ता में गिरावट लाने वाली प्रक्रियाओं में कई महत्वपूर्ण एंजाइम शामिल होते हैं:

पॉलीफेनोल ऑक्सीडेज (पीपीओ) और पेरोक्सीडेज: लीची में पेरिकारप ब्राउनिंग के लिए जिम्मेदार प्राथमिक एंजाइम हैं। पॉलीफेनोल ऑक्सीडेज ने फेनोलिक यौगिकों के ऑक्सीकरण को क्विनोन में उत्प्रेरित किया, जो भूरे रंग के रंगद्रव्य बनाने के लिए बहुलकीकृत होते हैं। हाइड्रोजन पेरोक्साइड की उपस्थिति में पेरोक्सीडेज, इस ब्राउनिंग प्रक्रिया में और योगदान देता है। भंडारण के दौरान इन एंजाइमों की गतिविधि काफी बढ़ जाती है, खासकर उच्च तापमान और आर्द्रता जैसी प्रतिकूल परिस्थितियों में।

फेनिलएलनिन अमोनिया-लाइज़ (पीएएल): पीएएल फेनिलप्रोपेनॉइड मार्ग में शामिल है और फेनोलिक यौगिकों के संश्लेषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जबकि फेनोलिक्स फल की रक्षा तंत्र के लिए आवश्यक हैं, उनका संचय, पीपीओ और पीओडी गतिविधि के साथ मिलकर, भूरापन बढ़ाता है।

लिपोक्सीजेनेस (एलओएक्स): एलओएक्स असंतृप्त फैटी एसिड के ऑक्सीकरण को उत्प्रेरित करता है, जिससे हाइड्रोपेरॉक्साइड का उत्पादन होता है। यह प्रक्रिया भंडारण के दौरान झिल्ली लिपिड क्षरण, कोशिका अखंडता की हानि और अप्रिय स्वाद के विकास से जुड़ी है।

कोशिका भित्ति को नष्ट करने वाले एंजाइम: पेक्टिन मिथाइलएस्टरेज़ (पीएमई), पॉलीगैलेक्टुरोनेज (पीजी), और β-गैलेक्टोसिडेस (β-गैल) जैसे एंजाइम लीची के फल को नरम बनाने में योगदान करते हैं। ये एंजाइम कोशिका भित्ति में पेक्टिन और अन्य पॉलीसेकेराइड को नष्ट कर देते हैं, जिससे बनावट में परिवर्तन होता है और उपभोक्ता आकर्षण कम हो जाता है।

एस्कॉर्बेट ऑक्सीडेज: एस्कॉर्बेट ऑक्सीडेज एस्कॉर्बिक एसिड (विटामिन सी) के ऑक्सीकरण को उत्प्रेरित करता है, जिससे इसका क्षरण होता है। विटामिन सी की कमी से न केवल लीची का पोषण मूल्य कम होता है, बल्कि इसकी एंटीऑक्सीडेंट रक्षा प्रणाली भी कमजोर होती है, जिससे फल ऑक्सीडेटिव तनाव के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाता है।

भंडारण के दौरान जैव रासायनिक परिवर्तन

ऊपर वर्णित एंजाइमेटिक गतिविधियाँ विभिन्न जैव रासायनिक परिवर्तनों को प्रेरित करती हैं जो भंडारण के दौरान लीची की गुणवत्ता को प्रभावित करती हैं।

पेरिकारप ब्राउनिंग: पेरिकारप ब्राउनिंग लीची में कटाई के बाद की सबसे प्रमुख समस्या है। यह मुख्य रूप से फेनोलिक यौगिकों के PPO और POD मध्यस्थ ऑक्सीकरण के कारण होता है। उच्च तापमान, कम आर्द्रता और यांत्रिक चोट जैसे पर्यावरणीय कारकों से ब्राउनिंग बढ़ जाती है।

पोषण संबंधी गिरावट: भंडारण के दौरान विटामिन सी का क्षरण एक महत्वपूर्ण चिंता का विषय है। एस्कॉर्बेट ऑक्सीडेज गतिविधि, ऑक्सीडेटिव तनाव के साथ मिलकर, विटामिन सी के स्तर में तेजी से गिरावट लाती है, जिससे फल की पोषण गुणवत्ता प्रभावित होती है।

बनावट का नुकसान: लीची के फल का नरम होना पेक्टिन मिथाइलएस्टरेज़ (पीएमई) और पॉलीगैलेक्टुरोनेज (पीजी) जैसे एंजाइमों द्वारा कोशिका भित्ति के क्षरण का परिणाम है। इससे एक नरम बनावट बन जाती है, जिससे फल की स्वीकार्यता कम हो जाती है।

स्वाद में बदलाव: लिपोक्सीजेनेस (एलओएक्स) और अन्य एंजाइमों की गतिविधि वाष्पशील यौगिकों के उत्पादन में योगदान करती है जो फल के स्वाद प्रोफ़ाइल को बदल सकते हैं। एलओएक्स द्वारा लिपिड पेरोक्सीडेशन से ऑफ-फ्लेवर का निर्माण हो सकता है।

माइक्रोबियल क्षय: पेरिकार्प और पल्प का एंजाइमेटिक विश्लेषण फल की संरचनात्मक अखंडता को कमजोर करता है, जिससे यह

माइक्रोबियल आक्रमण के लिए अधिक संवेदनशील हो जाता है। लंबे समय तक भंडारण के दौरान फंगल संक्रमण विशेष रूप से आम हैं।

कटाई के बाद होने वाली क्षति को कम करने की रणनीतियाँ

एंजाइमिक गतिविधि और जैव रासायनिक परिवर्तनों को कम करने के लिए कई तरीकों का इस्तेमाल किया जा सकता है, जिससे लीची की आत्म जीवन बढ़ जाती है:

तापमान प्रबंधन: कम तापमान पर भंडारण (0-4 डिग्री सेल्सियस) एंजाइमेटिक प्रतिक्रियाओं और माइक्रोबियल विकास को धीमा करने के सबसे प्रभावी तरीकों में से एक है। हालाँकि, ठंड से होने वाली क्षति से बचने के लिए सावधानी बरतनी चाहिए, जिससे बनावट और स्वाद में बदलाव हो सकता है।

संशोधित वातावरण पैकेजिंग: इसमें ऑक्सीजन के स्तर को कम करने और कार्बन डाइऑक्साइड के स्तर को बढ़ाने के लिए फल के चारों ओर गैसों की संरचना को बदलना शामिल है। यह एंजाइमेटिक गतिविधि को धीमा कर देता है, विशेष रूप से PPO और POD की, और पेरिकारप ब्राउनिंग में देरी करता है।

एंटीऑक्सीडेंट का उपयोग: एस्कॉर्बिक एसिड, साइट्रिक एसिड या सल्फर डाइऑक्साइड जैसे एंटीऑक्सीडेंट के साथ उपचार ऑक्सीडेटिव एंजाइमों को रोक सकते हैं और ब्राउनिंग को कम कर सकते हैं। ये यौगिक फल के रंग और पोषण गुणवत्ता को बनाए रखने में भी मदद करते हैं।

प्राकृतिक अर्क का उपयोग: फेनोलिक यौगिकों से भरपूर प्राकृतिक अर्क, जैसे कि चाय पॉलीफेनोल या पौधे के आवश्यक तेल, ने लीची में एंजाइमेटिक गतिविधि और माइक्रोबियल क्षय को कम करने की क्षमता दिखाई है।

खाद्य कोटिंग्स: चिटोसन, एलोवेरा जेल या कार्बोक्सिमिथाइल सेलुलोज जैसी सामग्रियों से बने खाद्य कोटिंग्स फल के चारों ओर एक सुरक्षात्मक अवरोध बनाते हैं। ये कोटिंग्स नमी के नुकसान को कम कर सकती हैं, एंजाइमेटिक ब्राउनिंग में देरी कर सकती हैं और शेल्फ लाइफ को बेहतर बना सकती हैं।

आनुवंशिक और जैव प्रौद्योगिकी दृष्टिकोण: आनुवंशिक संशोधन या चयनात्मक प्रजनन के माध्यम से कम PPO और POD गतिविधि या उच्च एंटीऑक्सीडेंट सामग्री वाली लीची किस्मों का विकास, कटाई के बाद की चुनौतियों का दीर्घकालिक समाधान प्रदान कर सकता है।

भविष्य के दृष्टिकोण

भंडारण के दौरान लीची में एंजाइमेटिक और जैव रासायनिक परिवर्तनों को समझने में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है, लेकिन नई संरक्षण तकनीकों का पता लगाने के लिए आगे अनुसंधान की आवश्यकता है। नैनोटेक्नोलॉजी, ओमिक्स-आधारित दृष्टिकोण और सटीक कृषि जैसी उन्नत तकनीकें लीची के तुड़ाई के बाद के जीवन को बढ़ाने के लिए अभिनव समाधान प्रदान कर सकती हैं। इसके अतिरिक्त, पारंपरिक ज्ञान को आधुनिक विज्ञान के साथ एकीकृत करने से छोटे पैमाने के किसानों और निर्यातकों के लिए लागत प्रभावी और टिकाऊ रणनीति विकसित करने में मदद मिल सकती है।

निष्कर्ष

लीची की तुड़ाई के बाद की गुणवत्ता एंजाइमेटिक गतिविधि और संबंधित जैव रासायनिक परिवर्तनों से काफी प्रभावित होती है। कई महत्वपूर्ण एंजाइम भूरापन, पोषण संबंधी गिरावट और बनावट में बदलाव जैसी प्रक्रियाओं में केंद्रीय भूमिका निभाते हैं। इन तंत्रों को समझकर, तापमान प्रबंधन, एमएपी, एंटीऑक्सीडेंट उपचार और खाद्य कोटिंग्स सहित प्रभावी हस्तक्षेप विकसित किए जा सकते हैं, ताकि लीची की शेल्फ लाइफ बढ़ाई जा सके। इस क्षेत्र में निरंतर अनुसंधान और नवाचार से न केवल लीची की बिक्री क्षमता बढ़ेगी, बल्कि तुड़ाई के बाद होने वाले नुकसान में भी कमी आएगी, जिससे उत्पादकों और उपभोक्ताओं दोनों को लाभ होगा।

16. लीची में अनियमित फलन : कारण एवं निवारण

ज्योति कुमारी[1], सुनील कुमार[2], अशोक धाकड़[2], रोहित कुमार[2] एवं गणेश कुमार[2]

[1]इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़, [2]भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र, मुजफ्फरपुर, बिहार

लीची एक सदाबहार और उपोष्णकटिबंधीय पेड़ है। इसके फलन के लिए नम एवं आर्द्र जलवायु की आवशयकता होती है। भारत में, बिहार की जलवायु लीची के लिए उपयुक्त है और इसका सबसे ज्यादा उत्पादन भी बिहार में ही हो रहा है, परंतु यह आंकड़ा पूरे विश्व का मात्र 1 प्रतिशत है। 4.1 से 19.5 प्रतिशत फल सेटिंग के साथ इसकी भागीदारी बाकी फलों के मुकाबले काफी कम है। गौरतलब है कि कम फूलों का फलों में बदलाव तक पहुंच पाना या उस से पहले ही गिर जाना; ये समस्या आम तो नहीं है, बल्कि कई और फलों में भी देखने को मिलती है। सेब, नाशपाती, आम आदि में भी एकांतर फलन देखने को मिलता है। लीची में यह अनियमितता की समस्या सबसे अधिक मात्रा में चाइना किस्म में देखने को मिलती है। इस समस्या का एक सबसे बड़ा कारण है एकांतर फलन या अनियमितता। अनियमितता में ज्यादातर फलों के फलन को ऑन एवं ऑफ ईयर के रूप में जाना जाता है। जिस साल फलन अपने असल रूप में भरपूर मात्रा में होती है उस वर्ष को ऑन ईयर और अनुगामी वर्ष में जरूरत से कम फलन या ना के बराबर फलन को ऑफ ईयर समझा जाता है। अनियमितता केवल जलवायु पर ही नहीं अपितु आनुवांशिक भी हो सकता है साथ ही साथ इसके कई और कारण भी हैं।

अनियमित फलन के कारण

पर्यावरणीय कारक

- शीत प्रेरित पुष्पण का ना हो पाना
- जाड़े का मौसम देर से आना जिसमें परिणामवश अनुगामी वर्ष में कम फलोत्पादन होती है
- पुष्पन और फलन के समय में बारिश का होना
- देर से पतझड़ का आना और ठंड का जल्दी आ जाना, बीते कुछ वर्षों में पृथ्वी के औसतन तापमान में वृद्धि के वजह से ठंड में भी तापमान का 10° C से नीचे ना जाना
- जब पुष्पण, फलन, होना हो, तभी तापमान की चरम सीमा का होना

आनुवांशिक कारण

- लीची के पुष्पन के लिए लोकस टी (एफ टी) जीन का होना आवश्यक है
- एफ टी जीन, एफ डी ट्रांसक्रिप्शन फैक्टर के साथ मिलकर फूलों को विकसित करना शुरू करते हैं
- एफ टी जीन फल देने वाली पत्तों में और पुष्पों के गुच्छों में होता है

पादप वृद्धि नियंत्रक

- प्ररोह में औक्सिन (आईएए) उच्च स्तर में होना पुष्पन को बढ़ावा देता है
- जिबरेलिक एसिड (जी ए) का अंतर्जातीय स्तर पर कम होना
- फूल आने के 3 से 4 हफ्ते तक साइटोकाइनिन का स्तर बढ़ना शुरू हो जाता है और 2 से 3 हफ्तों तक में यह अधिकतम स्तर पर पहुंच जाता है। उच्च आईएए और जीबेरेलिन का स्तर पुष्प कलि विभेदन को बढ़ता है। ऑक्सिन की मात्र ज्यादा होना पुष्पण के लिए लाभकारी है।

अंतर्जातीय कारक

- पत्ते, पुष्पण व्यवहार, बीज, रूटस्टॉक, वैरायटी, कैनोपी का घनत्व, इत्यादि।
- कार्बोहाइड्रेट की मात्रा में वृद्धि पुष्पण का कारण बनती है। चाइना वैरायटी में कार्बोहाइड्रेट को बढ़ने के लिए काफी कम समय मिल पाता है चुकी यह देर से परिपक्व होती है, तो साल के अंत तक इसका सारा कार्बोहाइड्रेट इस्तेमाल हो चुका होता है और पुष्पण के लिए कुछ शेष नहीं रह जाता है।
- कार्बन-से-नाइट्रोजन अनुपात (C:N) यह मिट्टी में इन दो तत्वों के संतुलन ही फसल की वृद्धि और सूक्ष्मजीव स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण हैं। यह दो तरह की हो सकती है
- उच्च सी:एन अनुपात - यह पुष्पण को बढ़ावा देती है और वनस्पतिक वर्धन को रोकती है।
- कम सी:एन अनुपात- यह पुष्पण को कम कर देती है और वनस्पतिक विकास को प्रतिबाधित कर देती है।

अन्य कारण

- पेड़ की उम्र- एक साल कम फल फूल अगले वर्ष के भारी फलन होने की संभावनाओं को दर्शाता है
- कटाई छटाई और निषेचन का न हो पाना
- गलत समय पर नाइट्रोजन या उस से संबंधित उर्वरक का इस्तेमाल जिसके वजह से पुष्पण के बजाय वानस्पतिक विकास का होना
- सही बागवानी तरकीबों का इस्तेमाल ना करना

निवारण

- निरंतर फलन देने वाली किस्मों का चुनाव: ज्यादातर जल्दी फलन होने वाली किस्मों में अनियमितता कम देखने को मिलती है
- चाइना किस्म में सितंबर के प्रथम सप्ताह (फूल आने से 5 से 6 महीने पहले) में पेड़ों की 50% प्राथमिक शाखाओं में 4 मिमी चौड़ाई की गर्डलिंग (वलयन) करने से नियमित फूल और फल लगते है

- सही समय पर कटाई छटाई करना
- सही समय पर उर्वरक और केमिकल्स को पौधों में डालना
- सिंचाई का खास बंदोबस्त
- सही पोषक तत्वों को पेड़ों को उपलब्ध कराना
- पादप वृद्धि नियंत्रकों का छिड़काव जैसे पैक्लोबुट्राज़ोल, पोटैशियम नाइट्रेट, एथरेल, एब्सिसिक एसिड इत्यादि। पैक्लोबुट्राज़ोल आम के पेड़, सेब, आदि पेड़ों में अत्यधिक कारगर है।
- उचित बाग प्रबंधन

चाइना किस्म की प्राथमिक शाखाओं में गर्डलिंग (वलयन) के द्वारा फलन

17. पर्यावरण सुरक्षा एवं मृदा सुधार में दलहनी फसलों की भूमिका

गणेश कुमार, रोहित कुमार, अजय कुमार रजक, धर्मेन्द्र कुमार एवं अशोक धाकड़
भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र, मुजफ्फरपुर, बिहार

दलहनी फसलें न केवल खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करती है बल्कि पर्यावरण संरक्षण एवं मृदा स्वास्थ्य सुधार में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। वर्तमान में हमारे देश की कृषि प्रणाली अनेक जटिल समस्याओं जैसे मृदा की उर्वरता क्षमता में लगातार कमी , जल संकट, वैश्विक तापमान में वृद्धि, जैव विविधता में कमी एवं नाइट्रोजन की आपूर्ति की चुनौती से जूझ रही है। इन समस्याओं का प्रतिकूल प्रभाव कृषि उत्पादन एवं उसकी गुणवत्ता पर लगातार हो रहा है। ऐसे में दलहनी फसलें इन चुनौतियों के समाधान में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से अटल सिद्ध होती हैं। इनकी प्राकृतिक नाइट्रोजन स्थिरीकरण क्षमता मृदा की उर्वरता बनाए रखने में काफी सहायता करती है जिससे टिकाऊ एवं व्यापक खेती को बढ़ावा मिलता है। इसके अतिरिक्त, दलहन मानव पोषण, पशुधन आहार, पर्यावरण तथा मृदा उर्वरता का टिकाऊ स्रोत कहा जा सकता है। बदलते पर्यावरणीय परिदृश्य में दलहनों को एक टिकाऊ और बहुआयामी संसाधन के रूप में प्रोत्साहित करना अत्यंत आवश्यक हो गया है। अतः इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए दलहन उत्पादन को बढ़ावा देकर हम न केवल कृषि क्षेत्र को सशक्त बना सकते हैं बल्कि सम्पूर्ण पारिस्थितिक तंत्र को भी संतुलित एवं व्यापक रख सकते हैं।

मानव सभ्यता पिछले लगभग 5,000 वर्षों से दलहनी फसलों की खेती कर रही है। ये फसलें आज विश्व के अधिकांश भागों में उगाई जाती हैं। क्षेत्रफल और उत्पादन के लिहाज से भारत विश्व में पहले स्थान पर है। दलहनी फसलें अपेक्षाकृत कम लागत वाली खाद्य फसलें होती हैं जिनमें प्रमुख रूप से मूंग, उड़द, अरहर, चना, लोबिया और मटर शामिल हैं। ये फसलें न केवल किसानों के बीच बल्कि उपभोक्ताओं के बीच भी अत्यंत लोकप्रिय हैं। हालांकि, अधिकांश किसानों को दलहनी फसलों के पर्यावरणीय लाभों और मृदा की उर्वरता बढ़ाने में इनकी भूमिका की पर्याप्त जानकारी नहीं होती है। इस कारण इन फसलों की खेती की पूरी संभावनाओं का उपयोग नहीं हो पाता।

मृदा स्वास्थ्य में दलहनी फसलों का योगदान

दलहनी फसलों की जड़ों में ***राइजोबियम*** नामक बैक्टीरिया पाए जाते हैं, जो इन फसलों के साथ ***सहजीवी संबंध*** स्थापित करते हैं। ये बैक्टीरिया वायुमंडलीय नाइट्रोजन को मृदा में स्थिर (स्थिरीकरण) कर देते हैं, जिससे मृदा में नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ जाती है। इसके परिणाम-स्वरूप दलहनी फसलों को बाहरी स्रोत से कम नाइट्रोजन उर्वरक की आवश्यकता होती है। इनकी कटाई के बाद बचे हुए पौध अवशेष भी मृदा में नाइट्रोजन की मात्रा बनाए रखने में सहायक प्रदान करती हैं। परिणामस्वरूप, अगली फसल में नाइट्रोजन उर्वरकों की आवश्यकता कम हो जाती है। दलहनी फसलें ***हरी खाद*** के एक प्रभावशाली विकल्प के रूप में भी उगाई जा सकती है।

मृदा में पोषक तत्वों की उपलब्धता मुख्यतः उसमें उपस्थित कार्बनिक पदार्थों की मात्रा पर निर्भर करती है। दलहनी फसलों के अवशेषों में कार्बन एवं नाइट्रोजन का अनुपात (C:N अनुपात) अपेक्षाकृत कम होता है, जिसके कारण ये अवशेष सूक्ष्मजीवों द्वारा जल्दी और आसानी से विघटित कर दिए जाते हैं। इस प्रक्रिया से मृदा में नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ती है और कार्बनिक पदार्थों की उपलब्धता भी सुधरती है। अतः दलहनी फसलें मृदा उर्वरता को बनाए रखने और सुधारने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती

दलहनी फसलों में मूसला जड़तंत्र होने के कारण इनकी जड़ें लगभग 6 से 8 फीट गहराई तक चली जाती हैं। इन फसलों के अवशेषों में नाइट्रोजन की मात्रा अधिक होती है, जिससे ये मृदा में केंचुओं की संख्या बढ़ाने में सहायक होती हैं। गहरा जड़तंत्र और केंचुओं द्वारा बनाए गए बिल मृदा की रंध्रता में वृद्धि करते हैं, जिससे मृदा में वायु संचार और जल परिसंचरण को प्रोत्साहन मिलता है।

फसल चक्र के दौरान उथले जड़तंत्र वाली फसलें, जैसे कि गेहूं, चावल आदि, मृदा की केवल ऊपरी सतह से ही पोषक तत्वों को ग्रहण कर पाती हैं। समय के साथ अधिकांश पोषक तत्व जल के साथ घुलकर मृदा की गहराई में चले जाते हैं, जिससे ये फसलें उन पोषक तत्वों का उपयोग नहीं कर पातीं। इसके विपरीत, दलहनी फसलें जैसे अरहर, चना, मूंग आदि, जिनका जड़तंत्र गहरा होता है, मृदा की गहराई से भी पोषक तत्वों का ग्रहण करने में सक्षम होती हैं। ये फसलें गहराई से पोषक तत्वों को ग्रहण कर उन्हें पुनः मृदा की ऊपरी सतह में लाकर पोषक तत्वों का पुनर्चक्रण करती हैं, जिससे भूमि की उर्वरता बनी रहती है और अगली फसल को पोषक तत्व उपलब्ध हो पाते है।

दलहनी फसलों की जड़ों में ग्लोमेलिन प्रोटीन पायी जाती है जो कि गोंद की तरह मृदा कणों को स्थिरता प्रदान करती है। इससे मृदा संरचना में सुधार होता है तथा मृदा जल संचयन में वृद्धि एवं मृदा अपरदन में कमी होती है। मृदा पी-एच में सुधार जब दलहनी फसलों वायुमंडलीय नाइट्रोजन का मृदा में स्थिरीकरण करती है तब इस प्रकिया द्वारा मृदा में धनायनों की संख्या णायनों की अपेक्षा बढ़ जाती है। इसके परिणामस्वरूप मृदा का पी-एच मान कम हो जाता है।

खाद्यान्न फसलें जैसे गेहूं, धान, मक्का व ज्वार के अवशेषों की तुलना में दलहनी फसलों के अवशेषों में कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात कम होने के कारण ये सूक्ष्मजीवों द्वारा खनिजीकरण के लिए अधिक उपयुक्त होती

हैं। इसलिए दलहनी फसलों के अवशेषों वाली मृदा में सूक्ष्मजीवों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक पायी जाती है।

लगातार एक ही प्रकार की अनाज वाली फसलें (जैसे गेहूं, धान आदि) उगाने से भूमि में विशेष प्रकार के कीटों एवं रोगों की संख्या में वृद्धि हो जाती है। इसका कारण यह है कि कीट एवं रोगजनक लगातार उसी फसल पर निर्भर रहते हैं और उन्हें अपने जीवनचक्र को पूर्ण करने के लिए आवश्यक पोषण एवं वातावरण मिलता रहता है। वहीं दूसरी ओर, यदि फसलचक्र में दलहनी फसलों (जैसे चना, मूंग, अरहर आदि) को शामिल किया जाए, तो यह कीट एवं रोगों के चक्र को तोड़ने में सहायक सिद्ध होता है। सामान्यतः अनाज वाली फसलों पर लगने वाले कीट एवं रोग दलहनी फसलों पर नहीं लगते, जिससे कीटों और रोगजनकों को उचित माध्यम नहीं मिल पाता और उनकी संख्या में स्वतः कमी आ जाती है। इसलिए फसलचक्र में विविधता लाना – विशेषकर दलहनी फसलों को सम्मिलित करना – एक प्रभावशाली जैविक उपाय है जो कीट व रोगों के प्रकोप को कम करने में सहायक होता है, साथ ही भूमि की उर्वरता भी बनाए रखता है।

कुछ दलहनी फसलें जैसे मोठ, मूंग, चवला एवं मूंगफली आवरण फसलों की श्रेणी में आती हैं। इन फसलों को अंतरसस्य प्रणाली में शामिल करने से खरपतवारों की वृद्धि एवं विकास के लिए उचित मात्रा में प्रकाश नहीं मिल पाता है। इसके फलस्वरूप खरपतवार प्रबंधन में मदद मिलती है।

सामान्यतः दलहनी फसलों में जल की आवश्यकता कम होती है। इसके अतिरिक्त ये फसलें अपनी पत्तियों से भूमि की ऊपरी सतह को ढक लेती हैं,जिससे भूमि की सतह से पानी का वाष्पीकरण कम हो जाता है और पानी की मात्र को अवशोषित बनाये रखने में मदद करती है जिससे परिणामस्वरूप दलहनी फसलों में पानी की मात्र कम होती है।

दलहनी फसलों को कम सिंचाई, कम उर्वरक और कम कीटनाशकों की आवश्यकता होती है, जिससे यह खेती को सतत और पर्यावरण के अनुकूल बनाती है। खासकर जैविक खेती में दलहनी फसलें बेहद महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। दलहनी फसलें केवल पोषण का स्रोत नहीं हैं, बल्कि ये मिट्टी को उपजाऊ बनाए रखने, रसायनों के उपयोग को घटाने, जल संरक्षण को बढ़ाने और पर्यावरण संतुलन को बनाए रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। ऐसे में इन फसलों का व्यापक स्तर पर प्रोत्साहन न केवल किसान की आय बढ़ा सकता है बल्कि एक स्वस्थ पर्यावरण और सतत कृषि की दिशा में भी बड़ा कदम हो सकता है।

18. वर्ष 2024 के दौरान केंद्र में राजभाषा हिंदी से सम्बन्धित गतिविधियाँ

सुनील कुमार, शुभम सिन्हा एवं रितेश कुमार

भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र, मुजफ्फरपुर, बिहार

हिंदी कार्यशाला, संगोष्ठी एवं प्रश्नमंच प्रतियोगिता

डॉ. बिकास दास, निदेशक, मुख्य अथिथि, श्री शैलेन्द्र प्रसाद, अध्यक्ष, नराकास, मुजफ्फरपुर का स्वागत करते हुए

भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र, मुशहरी, मुजफ्फरपुर ने दिनांक 27 जून 2024 को नराकास, मुजफ्फरपुर के तत्वावधान में हिंदी कार्यशाला, संगोष्ठी एवं प्रश्नमंच प्रतियोगिता का आयोजन किया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि श्री शैलेन्द्र प्रसाद, अध्यक्ष, नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, मुजफ्फरपुर एवं उप-महा प्रबंधक बैंक ऑफ़ इंडिया, मुजफ्फरपुर थे। कार्यक्रम के शुरुआत में डॉ बिकाश दास, निदेशक एवं अध्यक्ष, राजभाषा कार्यान्वयन समिति, भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र, मुशहरी, मुजफ्फरपुर ने सभी का स्वागत किया एवं उपस्थित कर्मियों को हिंदी का ज्यादा से ज्यादा से प्रयोग करने का निर्देश दिया। मुख्य अतिथि, श्री शैलेन्द्र प्रसाद, ने हिंदी में शत प्रतिशत कार्य करने के लिए सभी को आग्रह किया। कार्यशाला में श्री अनुप कुमार तिवारी, सदस्य सचिव, नराकास, मुजफ्फरपुर ने कार्यक्रम को आगे बढ़ाया एवं हिंदी के प्रयोग से सम्बंधित निति एवं नियमों (राजभाषा अधिनियम 1976) के बारे में सबको अवगत कराया। संस्थान के राजभाषा अधिकारी, डा. सुनील कुमार ने भी हिंदी के अधिक से अधिक उपयोग पर जोर देते हुए सभी को संबोधित किया। संगोष्ठी में विभिन्न राजभाषा अधिकारीयों के द्वारा हिंदी के प्रयोग को बढ़ाने के लिए विस्तृत चर्चा की गई। तत्पश्चात, एक प्रश्नमंच प्रतियोगिता का आयोजन किया गया जिसमें 40 प्रतिभागियों ने भाग लिया एवं विजेता (प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय) को पुरस्कृत किया गया।

हिंदी कार्यशाला में भाग लेने वाले प्रतिभागी

'हिन्दी चेतना मास' का आयोजन

सरकारी काम काज में राजभाषा हिन्दी के प्रति जागरूकता तथा उसके उत्तरोत्तर प्रयोग में गति लाने के उद्देश्य से राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर में 14 सितंबर से 14 अक्टूबर 2024 के दौरान 'हिन्दी चेतना मास' मनाया गया। इस अवसर पर हिंदी से सम्बंधित विभिन्न प्रतियोगिताओं (प्रश्नोत्तरी, हिंदी अनुवाद, हिंदी टंकण, श्रुत लेखन, सुलेखन, निबंध, वाद-विवाद) का आयोजन भी किया गया था। समापन समारोह के दोरान विजेता प्रतिभागियों को प्रमाण- पत्र सहित पुरुस्कृत किया गया।

तालिका: 1. हिंदी चेतना मास 2024 में आयोजित प्रतियोगिताओं के विजेता

प्रतियोगिता का नाम	प्रथम	द्वितीय	तृतीय
प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता	श्री सोमेश कुमार	श्री चमन कुमार	श्री पवन कुमार
हिंदी अनुवाद	डॉ. अशोक धाकड़	श्रीमती एकता	श्री रितेश कुमार
हिंदी टंकण	श्री श्याम पंडित	श्री अविनाश कुमार	श्री पवन कुमार
श्रुत लेखन	ई. अंकित कुमार	श्री रितेश कुमार	श्रीमती एकता
सुलेखन	श्री रितेश कुमार	श्री सावन कुमार	डॉ. रामाशीष कुमार
निबंध	डॉ. अशोक धाकड़	श्रीमती एकता	ई. अंकित कुमार
वाद-विवाद प्रतियोगिता	श्री सावन कुमार	हैप्पी कुमारी	ज्योति कुमारी

हिन्दी चेतना मास के शुभारम्भ पर हिंदी का प्रयोग करने हेतु प्रतिज्ञा लेते हुए कर्मचारी

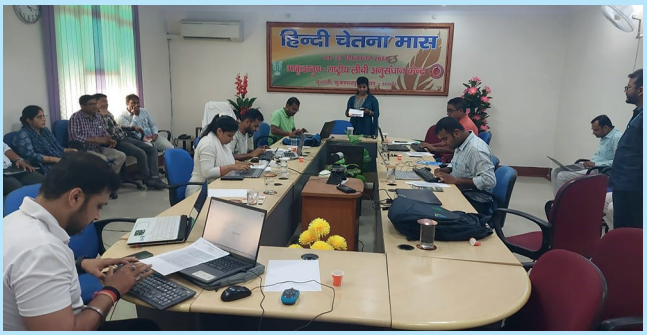

हिंदी टंकण प्रतियोगिता में भाग लेते प्रतिभागी

खेल प्रतियोगिता में भाग लेते प्रतिभागी

वाद विवाद प्रतियोगिता में भाग लेते प्रतिभागी

हिन्दी चेतना मास–2024 के समापन समारोह में पुरुस्कृत होते विजेता प्रतिभागी

राजभाषा कार्यान्वयन समिति की तिमाही बैठक

संस्थान में हिंदी के अधिकाधिक प्रयोग करने हेतु प्रत्येक तिमाही में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक की गई।

तालिका: 2. राजभाषा कार्यान्वयन समिति की तिमाही बैठक की तिथि

पहली तिमाही बैठक	12/04/2024
दूसरी तिमाही बैठक	08/07/2024
तीसरी तिमाही बैठक	04/10/2024
चौथी तिमाही बैठक	10/01/2025

हिन्दी सुविचार

वर्ष 2024 के दौरान सूचना पट्ट पर प्रदर्शित सुविचार निम्नलिखित है।

- जिंदगी में जिसने समय को मान लिया, उसने अपने आप को जान लिया।
- समझनी है जिंदगी तो पीछे देखो, जीनी है जिंदगी तो आगे देखो।
- जो बाहर की सुनता है वो बिखर जाता है, जो भीतर की सुनता है वो संवर जाता है।
- यह मत मानिए की जित ही सब कुछ है, महत्वपूर्ण यह है की आप किस उदेश्य के लिए जितना चाहते है।
- जैसे सूर्योदय होते ही अंधकार दूर हो जाता है, वैसे ही मन की प्रसन्नता से सारी बाधाएं शांत हो जाती है।
- झरनों से इतना मधुर संगीत कभी न सुनाई देता, अगर राहों में उनके पत्थर न होते।
- किसी को प्रेम देना सबसे बड़ा उपहार है और किसी का प्रेम पाना सबसे बड़ा सन्मान है।
- सीढियों की जरुरत उन्हें है जिन्हें छत तक जाना है, मेरी मंजिल तो आसमान है, रास्ता भी खुद ही बनाना है।

भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र

मुशहरी प्रक्षेत्र, मुशहरी, मुजफ्फरपुर - 842 002 (बिहार)

165_(0525)_Anapurna Press and Process 6287999194